योग सिद्धान्तों और शिक्षाओं का प्रतिपादक मासिक

सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

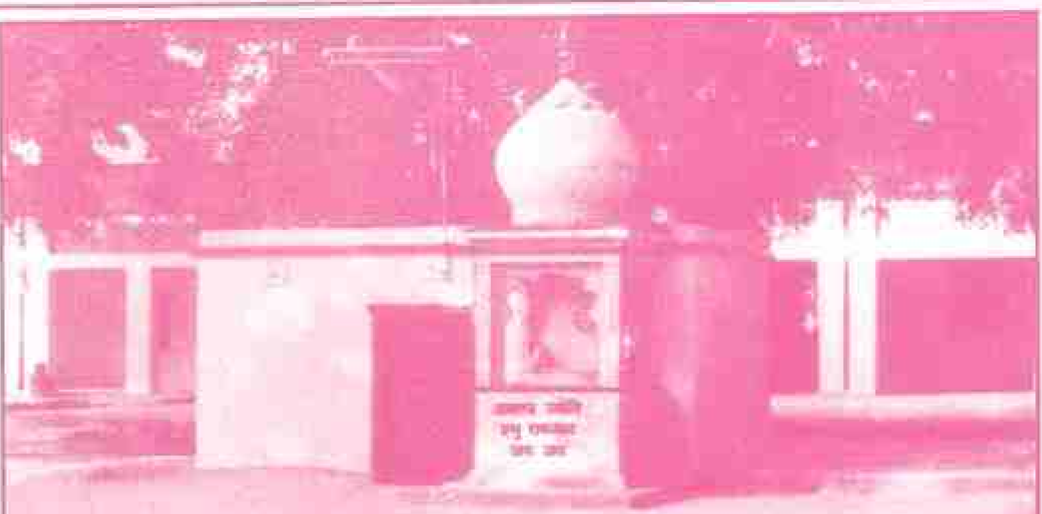

वर्ष 32 जनवरी, 2000 अंक 10

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन

संवाई (आगरा)-283 202

SIDDHYOG
MONTHLY

संस्थापक :
योग-योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :
आचार्य ब्र० दासलाल शर्मा

संयुक्त सम्पादक :
श्री भुवनेन्द्र झा

प्रबन्ध सम्पादक :
ब्र० राजेशचन्द्र शर्मा
चन्द्रशेखर 'दिव्य'
आचार्य चन्द्रहास शर्मा
राजेश कुमार श्रीवास्तव

एक प्रति	रु० 8-00
वार्षिक शुल्क	रु० 75-00
द्विवार्षिक	रु० 140-00
आजीवन	रु० 750-00

इस अंक में

- अमृत कण 2
- विशेष लेख
  अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज 3
- सम्पादकीय 10
- सिद्धदेह की प्राप्ति के उपाय
  आचार्य चन्द्रहास शर्मा 13
- ब्रह्मचर्य और योग
  स्वामी डा० केशवाचार्य 21
- श्रीभगवद् गीता में भगवान की प्रतिज्ञायें
  ब्रह्मचारी ओमप्रकाश 26
- साधना-पथ-पाथेय
  डा० विजय सिंह 30
- श्रीमती बसन्ती की शरणागति
  केशवदेव उपाध्याय 33
- सद्गुरुदेव की अलौकिक कृपा
  श्रद्धा राठौर 38
- स्वास्थ्य चर्चा 40

सुस्वागतम् ! नव वर्ष !

नव वर्ष का स्वागत करते हुए हम अपने सभी पाठकों, गुरु भाई–बहिनों एवं योग साधकों का हार्दिक अभिनन्दन करते हैं। हमारी कामना है कि वर्ष 2000 ई० आप सभी के लिए सर्वोतुखी–सफलता, सुख–समृद्धि एवं पूर्ण आरोग्य का प्रदाता सिद्ध हो।

—सम्पादक

सिद्धयोग

योग-सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, संवाई (एत्मादपुर) आगरा

वर्ष 32 अंक 10	ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्, मर्त्यो मृत्योर्मुख विवरतो, मुक्ति माप्नोति सद्य:। तत्राप्यर्थान् बहुतर विषदान योगशास्त्रोपदेशान्, कल्याणानां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोग:।।	जनवरी 2000

प्राग्नये तवसे भरध्वं गिरं दिवो अरतये पृथिव्या। यो विश्वेषाममृतानामुपस्थे वैश्वानरो वावृधे जागृवद्भि:। ऋग्वेद

भावार्थ

हे मनुष्यों ! जो सम्पूर्ण मनुष्यों में प्रकाशमान जगदीश्वर सूर्य व पृथ्वी के मध्य (सम्पूर्ण विश्व में) सब अनश्वर जीवात्माओं एवं प्रकृति आदि में व्याप्त होकर वृद्धि व विकास करते है, उसे अविद्या की निद्रा से जाग्रत होने वाले ही पाते है। उस सर्वशक्तिमान् एवं सर्वव्यापक प्रभु के उपदेश धारण कर.उसकी स्तुति, प्रार्थना एवं उपासना करो।

अमृत कण

अनागतविधाता च प्रत्युपन्नमतिस्तथा।
द्वावेतौ सुखमेधेते यद्‌भविष्यो विनश्यति।।

–चाणक्य सूत्र

वह महान् है, जो संकट की पूर्वकल्पना से ही अपने बचाव के सभी उपाय कर लेता है और जिसे विपत्तियों या दुःख के आगमन पर आत्मरक्षा का उपाय सूझ जाता है, ऐसा व्यक्ति दोनों ही दृष्टि से अपने सुख की वृद्धि करता है। किन्तु जो व्यक्ति भाग्य के वश में होकर चलता है या यह मानता है कि जो भाग्य में लिखा है वही होगा, उसका विनाश अवश्यंभावी है।

* * *

यथातथोपदेशेन कृतार्थः सत्वबुद्धिमान्।
आजीवमपि जिज्ञासुः परस्तत्र विमुह्यति।।

–अष्टावक्र गीता

सत्व बुद्धि वाला व्यक्ति जैसे–जैसे यानि थोड़े से उपदेश से भी कृतार्थ हो जाता है, जबकि असत्व बुद्धि वाला व्यक्ति आजीवन जिज्ञासा करके भी उसमें मोह को ही प्राप्त होता है।

* * *

पुराणमित्येव न साधुसर्वं न चापि सर्वं नवमित्यवद्यम्।
सन्तः परीक्ष्याऽन्यतरद्‌भजन्ते मूढः परप्रत्यनेयबुद्धिः।।

–कालीदास

कोई वस्तु प्राचीन होने से ही श्रेष्ठ नही होती और न कोई वस्तु नवीन (आधुनिक) होने से ही श्रेष्ठ होती है। विवेकयुक्त व्यक्ति ज्ञान से परीक्षा करके ही दोनों में से श्रेष्ठ को स्वीकार करते हैं, जबकि मूढ़ व्यक्ति अन्य व्यक्तियों के विश्वास के अनुसार चलता है।

* * *

दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्।।

अग्नि से तपाये जाने पर जैसे धातु का मल जल जाता है, उसी प्रकार प्राणवायु के निग्रह से इन्द्रियों के सारे दोष दग्ध हो जाते हैं।

विशेष लेख

कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्

योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

मै अभी-अभी ब्रह्मचारी ज्ञानी राम से अखिलात्मा श्री कृष्ण चन्द्र के दिव्य चरित्रों से भरे भजन सुन रहा था। उन्हें सुनते हुये मुझे भगवान के और अलौकिक चरित्र भी याद आने लगे। श्री मद्भागवद् में लेख मिलता है **'एते चांशकला: पुंस: कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्'** अर्थात् जितने और जो दस अवतार हुये है वे आदमी थे, अवतार थे। अवतार उसको कहा जाता है, जिसके अन्दर किसी शक्ति विशेष का अवतरण हो। जिसके अन्दर ऐसी विशेष शक्ति आ जाती है, वह मनुष्य अवतार कहलाता है। एक बार ऋषिकेश आश्रम में एक ध्यानी बच्चे ने श्री प्रभु जी के सामने एक अनुभव सुनाया। उस साधक ने ध्यान में भगवान श्री कृष्ण से पूछा–महात्मा गाँधी आप की कितनी कलाओं को धारण करते है ? अर्थात् महात्मा गाँधी में आपकी कितनी कलाये है। भगवान कृष्ण ने जवाब दिया **'कलात्रयम्'** अर्थात् गाँधी जी में तीन कलायें है। इसका मतलब यह हुआ कि गाँधी जी भी अवतार श्रेणी के अन्दर आ गये। क्योंकि उन्होंने तीन कलायें लेकर संसार में काम किया और यह ठीक भी है। श्री प्रभु जी के सामने भी यह प्रश्न रखा गया कि क्या गाँधी जी के अन्दर ईश्वरीय कलायें है ? श्री प्रभु जी ने इसका उत्तर देते हुये कहा था–बिल्कुल ठीक बात है। किन्तु यह बात ज्यादा बकने की नहीं अर्थात् इन बातों का प्रचार तो नहीं करना चाहिये। किन्तु गाँधी जी ने जो काम किये वे ईश्वरीय कलाओं को लेकर ही किये।

'एते चांशकला: पुंस: कृष्णस्तु भगवान स्वयम्'

ये जो जितने भी अवतार हुये है, वे अंशकला को धारण करने वले अवतार है। किसी में एक कला थी, किसी में दो कलाएँ थी–किसी में चार और किसी में बारह कलाएँ थी। किन्तु भगवान् श्री कृष्ण स्वयम् भगवान है। हम लोग नित्य श्रीमद् भगवद्गीता पढ़ते है। समय-समय पर श्री मद्भागवद् का भी पाठ करते है। उन सब में भगवान् ने योग की श्रेष्ठता बताई है। गीता के पाँचवे अध्याय में प्रश्न हुआ कि योग और ज्ञान में कौन श्रेष्ठ है ? इसका उत्तर देते हुये भगवान ने कहा–**'एकं सांख्यं च योगं च य: पश्यति य पश्यति'** साँख्य और योग को जो एक समझता है वह ठीक समझता है। किन्तु एक बात विशेष कही–

संन्यासस्तु महाबाहो दु:खमाप्तुम योगत:।
योग युक्तो मुनिर्ब्रह्म नचिरेणाधिगच्छति।।

अर्थात् संन्यास बिना योग के उस परम पद को प्राप्त नहीं करा सकता। किन्तु योग युक्त मुनि शीघ्र ही ब्रह्म को पा जाता है। श्री मद्भगवद् गीता एवं भागवतादि में भगवान कृष्ण का सम्बोधन

केवल योगेश्वर एवं योगयोगेश्वर आदि नामों से ही किया गया है। श्री मद्‌भगवद् गीता में अर्जुन को उपदेश देते हुये भगवान् ने बताया है कि योगी तपस्वियों से भी श्रेष्ठ होता है। वह कर्म योगी तथा ज्ञानयोगी से भी श्रेष्ठ होता है। इसलिये तू योगी बन ! **योगी परमस्थानं उपैति चाद्यम्** योगी, वेद में, यज्ञ में, तप में एवं दान में पुण्य फल कहा गया है उन सब को लाँघकर परम पद को प्राप्त हो जाता है। इसके अतिरिक्त भगवान् के चरित्र में सर्वत्र योग ही टपकता है, योग के अतिरिक्त कोई बात ही नहीं। लोग अपने मन में कुछ भी समझते रहें, यह अलग बात है। किन्तु भगवान के जीवन चरित्र में योग ही योग व्याप्त है। भगवान् ने अर्जुन को गीता का उपदेश दिया किन्तु अर्जुन को ठीक प्रकार से समझ नही आया। उन्होंने कहा-

एवमेतद्यथात्थ त्वमात्मानं परमेश्वरा
दृष्टुमिच्छामि ते रुपमैश्वरं पुरुषोत्तम।।

हे पुरुषोत्तम ! आप जो कहते है, ठीक है। परन्तु मेरे संशय का नाश नहीं हुआ। इसलिये मै आपके उस अव्यय विराट रूप को देखना चाहता हूँ। भगवान ने कहा- अर्जुन कह तो तुम ठीक रहे हो। **किन्तु नं तु मां शक्यसे दृष्टुमननैव स्वचक्षुषा। दिव्यम् ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम्।।** अर्थात् तू अपनी इन आँखों से मेरे अव्यय रूप को नही देख सकता। मै तुझे दिव्य चक्षु देता हूँ, उससे तू मेरी उस अविनाशी रूप को देख। यह कहकर भगवान ने अर्जुन को अपना विश्व रूप दिखाया। इससे पहले अर्जुन सोचता था कि यह मेरा साला है। साले का दर्जा बहनोई की अपेक्षा छोटा ही होता है। किन्तु जब विश्व रूप देख लिया तो अर्जुन ने कहा- **''यच्चावहा सार्थमसत्कृतोऽसि विहारशय्यासनभोजनेषु''** अर्थात् मैंने भोजन के समय अथवा अन्य व्यवहार में आपका निरादर किया हो तो आप मुझे क्षमा करे। क्यो क्षमा करें क्योंकि-**''पितासिलोकस्यचराचरस्य''** आप सम्पूर्ण चराचर के पिता है, गुरुओं के भी गुरु हैं। आप के समान भी कोई नहीं हैं। फिर आप से बढ़कर कोई कैसे हो सकता है ? तीनों लोकों में आपका अप्रतिम प्रभाव है।

योग दर्शन मे ईश्वर के लिये एक सूत्र आया है- **''स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्''** वह ईश्वर पूर्व में होने वालो का भी गुरु है, क्योंकि वह काल की गति से अतीत है। वही बात भगवान् कृष्ण के लिये गीता में कही गई है। योग-दर्शन में ईश्वर को काल की गति से परे होने के कारण गुरुओं का भी गुरु कहा है। गीता में भी भगवान् कृष्ण को गुरुओं का गुरु बताया है। इस तरह से भगवान कृष्ण में सद्‌गुरु तत्व होना निश्चित है।

भगवान के विराट एवं भयानक रूप को देखकर अर्जुन डर से काँपता हुआ कहने लगा-प्रभो ! आप का यह रूप बहुत डरावना है। आप ने यह किस निमित्त से धारण किया है ? भगवान ने कहा-**'कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्तः।'**

हे अर्जुन ! मै काल हूँ। संसार को नष्ट करने के लिये प्रवृत्त हुआ हूँ। जितने भी यह तेरे शत्रु योद्धा है इन सबको मैंने मारना ही है, चाहे तू युद्ध कर या न कर। इसलिये **'मयैवैते निहताः**

पूर्वमेव। मिमित्त मात्रं भव सव्य साचिन्। ' अर्थात् इन्हे पहले ही मार दिया है, तू निमित्त मात्र होकर मेरे मारे हुओं को मार।

महा भारत का युद्ध आरम्भ हुआ। एक दिन भीष्म पितामह ने प्रतिज्ञा की कि कल मै भगवान् से शस्त्र उठवा कर रहूँगा। शाम तक भगवान् ने शस्त्र नहीं उठाया। जब शाम तक भगवान ने शस्त्र नही उठाया, तो भीष्म पितामह मन ही मन कहने लगे–हे स्वामी। आज तो आपने अपनी प्रतिज्ञा रख ली है, और मेरी तोड़ दी है। भगवान् उसके भावों को जानकर हंस पड़े। अर्जुन से कहने लगे–अर्जुन ! क्या एक बूढ़े के पीछे पड़ा हुआ है, उधर देख संशप्तक लोग क्या कर रहे है ? इस प्रकार कह कर अर्जुन का मुहरा घुमा दिया। इतने मे ही भीष्म ने दस बाण भगवान पर छोड़ दिये। बाण उनको लग तो सकते नही थे अमोघ कवच लगा था। किन्तु बाणों को लगा देख कर कृष्ण ने सुदर्शन को याद किया और याद करते ही सुदर्शन उंगलियों पर आ गया। यह देखकर भीष्म ने अपने धनुष बाण नीचे रख लिये और हाथ जोड़ कर कहने लगा–'**एहि एहि पुण्डरीकाक्ष** हे पुण्डरीकाक्ष कृष्ण ! आइये आइये' आप मुझे मार दे मै आप का सेवक हूँ। भगवान हंस पड़े और सुदर्शन को वापिस भेज दिया।

युद्ध मे अर्जुन ने जयद्रथ को मार देने की प्रतिज्ञा कर ली। यदि वह ऐसा नही कर सका तो स्वयं मर जाने की प्रतिज्ञा भी की। घमासान युद्ध होता रहा। किन्तु जयद्रथ मारा नही गया। अन्त मे अर्जुन का अभिमान भी तोड़ना था। चिता तैयार की जाने लगी। भीमसेन आदि सब दुःखी थे। उस समय भगवान कृष्ण ने अपनी माया फैला दी–

'योगी योगेन संयुक्तो योगिनाम् ईश्वरो हरिः'

सब को मालूम हुआ कि दिन छिप गया है। वस्तुतः दिन तो छिपा नही था। भगवान ने अंधेरा उत्पन्न कर दिया था। उधर दुर्योधन के मन मे प्रेरणा कर दी। वह जयद्रथ से कहने लगा–जयद्रथ ! चल पाण्डवों के पास अर्जुन आत्मदाह करने जा रहा है उसका मजाक उड़ायेंगे। जयद्रथ दुर्योधन दोनों अर्जुन के पास पहुँच गये। कहने लगे– 'रे कायर अर्जुन ! प्रतिज्ञा तो तेरी पूरी नहीं हो पाई है, अब देर क्यों करता है ? जल्दी से चिता मे प्रवेश कर ! देख ! जिसको तुम भगवान् कहते हो वह हंस रहा है और तुम मौत के मुंह मे जा रहे हो। भगवान् कृष्ण अर्जुन से कहने लगे–''अर्जुन ! तू चिता मे अपने गाण्डीव को भी साथ ले ले और अपने अमोघ शक्ति को भी साथ मे ही रख ले।'' अर्जुन कहने लगा–महाराज ! अमोघ का क्या करूँगा अब ? भगवान कहने लगे– अरे नहीं। तेरे गाण्डीव और अमोघ का पीछे से कोई अपमान करेगा, कोई इधर-उधर फैकेगा। इसलिये तू इन्हे अपने साथ ही रख ले।

अर्जुन ने गाण्डीव और अमोघ को अपने साथ रख लिया। जयद्रथ कहने लगा–'अर्जुन ! तू अमोघ-उमोघ सब साथ मे रख ले, किन्तु जल्दी चिता मे प्रवेश कर और मर ले।' अर्जुन चिता मे बैठ गया। इतने मे भगवान् श्री कृष्ण सब राजाओं को सम्बोधित करते हुये कहने लगे ''हे राजा महाराजाओं! देखो ! द्रोणाचार्य ने वैसे ही युद्ध बन्द की घोषणा कर दी है। सामने पश्चिम की ओर

देखो, अभी सूर्य कितना बाकी है छिपने को। अभी तो डेढ़ घण्टा दिन शेष है दुर्योधन की ओर मुड़ कर कहने लगे–दुर्योधन ! सूरज है कि नहीं है ? हाँ महाराज ! सूरज तो है। जयद्रथ ! सूरज है ? हाँ महाराज, है।" भगवान कहने लगे– अर्जुन देखता क्या है ? बाण चढ़ा ले गाण्डीव पर, काट दे जयद्रथ का सिर ! अमोघ छोड़ते हुये यह संकल्प कर के छोड़ कि इस सिर को उसके पिता के हाथ में रख दे।

उसका पिता वृहद्रथ, कुरुक्षेत्र में (संध्या) तर्पण कर रहा है। जयद्रथ के पिता का नाम वृहद्रथ था उसने अपने पुत्र जयद्रथ को वरदान दिया हुआ था–

धरण्यां मम पुत्रस्य पातयिष्यति यः शिरः।
तस्यापि शतधा मूर्धा पतिष्यतिन संशयः।।

अर्थात् मेरे बेटे के सिर को जो पृथ्वी पर गिरायेगा उसके भी सिर के सौ टुकड़े हो जायेंगे। "अर्जुन ने संकल्प करके अमोघ छोड़ दिया। वृहद्रथ सूर्य को अर्घ्य दे रहा था। संकल्प के प्रभाव से जयद्रथ का सिर कट कर अपने पिता की अञ्जलि में मे आ गया। अपने पुत्र के सिर को अपने हाथ में गिरा देखकर संभ्रमित होकर वृहद्रथ कहने लगा–" अरे ! अरे बेटा जयद्रथ! जयद्रथ बेटा! अरे, अरे ! ऐसा कहते–कहते वृहद्रथ के हाथ से वह सिर जमीन पर गिर पड़ा और उसी समय वृहद्रथ के सिर के भी सौ टुकड़े हो गये। मैं बहुत लम्बी बात बढ़ाना नहीं चाहता महाभारत की लड़ाई में जगह–जगह पर भगवान ने पाण्डवों की सहायता की और ये लोग बचते रहे। कर्ण के पास में एक अमोघ शक्ति थी। अमोघ शक्ति का अर्थ यह है कि जिसके लिये वह चलाई जाये उसका नाश होना ही होना है। कर्ण ने यह अर्जुन के लिये रख रखी थी। भगवान् कृष्ण को इस की चिन्ता रहा करती थी। एक दिन भगवान रात के समय घटोत्कच (जो हिडिम्बा से उत्पन्न भीम का पुत्र था) से कहने लगे–घटोत्कच ! तू तो राक्षस है, तेरे लिये क्या दिन और क्या रात ? हमला कर दे कौरवों पर ! घटोत्कच ने रात में ही धावा बोल दिया। उसने सीधा जाकर दुर्योधन पर हमला बोल दिया। यह देखकर दुर्योधन कहने लगा–"अरे कर्ण! चला दे अपनी ममोघ शक्ति इस पर, नहीं तो यह हम सब को मार देगा। कर्ण कहने लगा–'महाराज' यह अमोघ तो मैंने अर्जुन के लिये रख रही है" अरे, अर्जुन के बारे में तो बाद में सोचना, अभी तो हम सब का काल सामने खड़ा है। चला दे इस पर अमोघ।' कर्ण ने घटोत्कच पर अमोघ चला दिया। घटोत्कच मारा गया। भीमसेन आदि उस की मृत्यु पर दुःखी होने लगे। श्री कृष्ण हंस रहे थे। यह देखकर भीमसेन उनसे कहने लगा–महाराज ! हमारा पुत्र मारा गया है और आप हँस रहे हैं, यह क्या बात है ? भगवान् कहने लगे–भीमसेन ! तेरा लड़का घटोत्कच तो राक्षस था ही। उसे तो कभी मैं ही मार देता। किन्तु आज से तेरा भाई अर्जुन बच गया। आज अमोघ निकल गई, नहीं तो अर्जुन मारा जाता। बात सब की समझ में आ गई। इसी प्रकार भगवान् ने पग–पग पर पाण्डवों की इस युद्ध में रक्षा की। महाभारत का युद्ध पाण्डव जीत गये। पहले नित्य ही भगवान् रथ से नीचे उतर आते थे, तब फिर अर्जुन उतरता था। किन्तु लड़ाई जिस दिन जीत गये भगवान् नहीं उतरे नीचे। अर्जुन से कहने लगे–अर्जुन जल्दी से उतर जाओ रथ,

से। 'अर्जुन कहने लगा–महाराज ! आज तो मैं युद्ध जीत कर आया हूँ महलों से रानियाँ आयेंगी। मुझे माला पहनायेंगी, आरती उतारेंगी, तब मैं रथ से उतरूँगा।' भगवान ने आज्ञात्मक शब्दों में कहा–अर्जुन ! तुम उतर जाओ रथ से नीचे।' अर्जुन चुपचाप उतर गया। उसके तुरन्त बाद श्री कृष्ण रथ से उतरे। श्रीकृष्ण के रथ से उतरते ही भक्क से रथ में आग लग गई और सारा रथ जल गया ! अर्जुन कहने लगा– 'महाराज ! यह क्या हुआ ?' भगवान् कहने लगे। इसीलिये तो मैंने तुम्हें रथ से पहले उतार दिया था। यदि आज तू मेरे बाद रथ से उतरता तो तू भी रथ के साथ ही जल जाता।' अर्जुन ने पूछा–''महाराज ! ऐसा क्यों हुआ ?'' भगवान ने उत्तर दिया–अर्जुन, बड़े–बड़े दिव्यास्त्रों से यह रथ पहले ही जल चुका था। किन्तु मेरे इस मैं बैठे रहने के कारण जलता नहीं था–आज तू ने युद्ध जीत लिया और मैंने यह रथ भी छोड़ दिया, इसलिये यह जल गया है। अर्जुन की आँखे खुल गईं।

एक घटना और घटी। महाभारत युद्ध शुरू होने से पहले बब्रूवाहन नाम का एक अत्यन्त शक्तिशाली योद्धा तीन बाण लेकर घूम रहा था। भगवान कृष्ण ने कहा--''अर्जुन ! काबू पा ले इस पर नही तो बड़ा मुश्किल होगा युद्ध जीतना।'' अर्जुन कहने लगा–''महाराज! इस के बाणों में ऐसी क्या खास बात है ?'' भगवान बोले–'' अर्जुन ! एक ही बाण से यह सबका नाश कर सकता है। ''महाराज कैसे जानू इस बात को''। भगवान कहने लगे–एक उपाय है। तू ब्राह्मण बन कर इसके पास जा, मैं भी साथ चलूँगा। फिर उससे पूछना कि इन तीन बाण से तुम क्या करोगे ? वे दोनों ब्राह्मण वेश बनाकर उसके पास पहुँचे और कहने लगे–महाराज! आप इन तीन बाणों से क्या करोगे ? उसने कहा–''हे ब्राह्मणों ! मुझे इन तीन बाणों का प्रयोग नही करना है। मैं एक ही बाण से इन सारे योद्धाओं को मार सकता हूँ।'' वे दोनों कहने लगे–महाराज ! यह कैसे संभव है ? ''वह कहने लगा–''अच्छा देखो ! मैं तुम्हें नमूना दिखाता हूँ। ''एक बाण छोड़ दिया। श्री कृष्ण चन्द्र को छोड़ कर सब के तिलक लग गये–कहने लगा–''जिस–जिस को तिलक लग गया है, उन सब को मैं अपने इस एक बाण से ही मार दूँगा। श्री कृष्ण ने अर्जुन से कहा–''कर ले किसी तरह से इसे काबू में। नहीं तो आपत्ति खड़ी हो जायेगी। उससे पूछा–महाराज ! आप युद्ध में किस पक्ष की ओर होंगे ? वह कहने लगा–जो पक्ष हार जायेगा मैं उसकी ओर होऊँगा। श्री कृष्ण अर्जुन से कहने लगे–यदि कौरव हार गये तो यह उधर होगा और तुम सब का नाश करेगा। यदि तुम हारे तो तुम्हारी तरफ होकर उन सब का नाश करेगा। किन्तु, हारेंगे तो वही लोग इसलिये यह उधर होगा। तो तुम्हारा नाश अवश्यम्भावी है।' अर्जुन ने पूछा–'महाराज ! क्या उपाय है इससे बचने का ?''

भगवान कहने लगे! एक उपाय है। 'ब्राह्मण बनकर भिक्षा माँग' अर्जुन ने तिलक चन्दन आदि लगा कर ब्राह्मण का वेश बना लिया। पीछे–पीछे भगवान भी छोटे पण्डित जी बन गये। उसके पास जाकर ये दोनों कहने लगे। ''महाराज बब्रूवाहन की जय हो, महाराज बब्रूवाहन की जय हो' वह कहने लगा–''आओ ब्राह्मणों आओ कैसे आये हो ?'' वे दोनों कहने लगे–''महाराज ब्राह्मण तो भिक्षा मांगा करते है, भिक्षा के लिये आये है।'' मांगो खुशी से माँगो तुम्हें जो भिक्षा चाहिये। पिछले

छोटे पण्डित जी ने आगे वाले को पहले ही सब सिखा दिया था। आगे वाला पण्डित बोला–'महाराज! हमें आपका सिर चाहिये। वह कहने लगा–''अरे ब्राह्मणों! यह तुमने क्या माँग लिया ? मुझे तो महाभारत का युद्ध देखना था। परन्तु तुमने मुझे विपत्ति मे डाल दिया है। वह सिर देने को तैयार हो गया किन्तु महाभारत देखने की अपनी बात दोहराई। उस पर छोटे पण्डित जी (श्री कृष्ण जी) बोले–महाराज आप पूरा महाभारत देख सकेंगे ऐसा उपाय हम कर लेंगे। आप का सिर काट कर हम ऊँचे से बाँस पर टाँग देंगे और हमारी कृपा से आप पूरा महाभारत देख लोगे। जब युद्ध समाप्त होगा तभी आपका वह सिर नीचे गिरेगा। तब तक आप जिन्दा ही रहोगे। ''अच्छा ब्राह्मणों काट लो''। सिर कट जाने के बाद उसे ज्ञान हो गया कि ये तो अर्जुन और कृष्ण हैं। उस सिर को काट कर ऊँचे बाँस पर टाँग दिया गया और वह युद्ध देखता रहा। बीच-बीच में वह सिर कहता था–''यह देखो! वह वीर मारा गया। यह गलत हुआ, अन्याय हुआ आदि-आदि! युद्ध समाप्त हुआ। युधिष्ठिर कहने लगा–महाराज! हमने युद्ध जीता है। वह सिर कहने लगा–नही तुमने नहीं जीता। भीम कहने लगा–गन्धारी के सारे लड़के मैने मारे है। वह सिर कहता है ! तुमने नही मारे है।'' नकुल सहदेव कहने लगे हमने शकुनि को मारा, अमुक को मारा। सिर कहने लगा। नही, तुमने नही मारे है। 'अर्जुन पूछने लगा–महाराज! इन लोगों को यदि हमने नही मारा है, तो किसने मारा है?' वह कहने लगा– अर्जुन ? वह जो छोटे पण्डित जी बनकर तुम्हारे साथ मेरे पास आये थे न उन्हीं मोर मुकुट वाले ने ये सब मारे हैं, उन्हीं ने सब को खाया है। तुमने किसी को नही मारा। यही बात भगवान् ने गीता में कही है–**''कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो लोकान् समाहर्तुमिह प्रवृत:''**। अर्थात् मै काल हूँ। इन सब योद्धाओं को खाने के लिये प्रवृत्त हुआ हूँ। वह सिर कहने लगा। वह जो छोटे पण्डित जी है न, उन्होंने मुझे दिव्य दृष्टि दे दी है उस समय तो मै इन्हें पहचान नही सका था। अब मै इन्हे पहचान गया हूँ। इन्होंने ही सारे योद्धाओं को काल बनकर अपने मुख का ग्रास बनाया है। अस्तु!

मेरे मन में भाव आया इसीलिए मैने ये सब बातें कह दी। उनकी ब्रज लीलाओं मे भी योग ही योग छलकता है। कालीदह का विषाक्त पानी पीकर ग्वाल बाल मर गये थे। भगवान् ने जाकर उनको देखा! क्या लिखा है भागवत् में–

वीक्ष्य तान् वै तथा भूतान् कृष्णो योगेश्वरेश्वर:।
इक्षयामृतवर्षिण्या स्वनाथान् समजीवयत्।

योगयोगेश्वर श्री कृष्ण ने अपनी अमृत बरसाने वाली आँखों से उन्हें देखा और जीवित कर दिया। हमारी एक गुरु बहिन रुक्मिणी देवी मुरादाबाद में रहती थी। उसने श्री प्रभु जी को अपने घर ले आकर अपने मकान के पिछले हिस्से को दिखला कर कहा–''प्रभु जी! इस कमरे में भूत बाधा है। आप अपनी दृष्टि डालो। बहिन रुक्मिणी देवी ने मुझे स्वयं बताया कि श्री प्रभु जी ने एक बार उधर दृष्टि डाली और कहा–''जा! अब यहाँ कोई उत्पात नही होगा।'' उस दिन से वहाँ का सब उत्पात खत्म हो गया। आग लग गई बृज मण्डल में, सब ग्वाल बाल रोने लगे थे। तब भगवान ने

सब ग्वालबालों से कहा था-"सब अपनी-अपनी आँखे बन्द कर लो।" सब ने आँखे बन्द कर ली। तब भगवान ने जो किया, वह सब जानते है उल्लेख है-

तथेति मिलिताक्षेषु भगवानग्निमुल्वणम्।
पीत्वा मुखेन तान् कृच्छ्राद् योगाधीशो व्यमोचयत्।

अर्थात् तब योगेश्वर भगवान कृष्ण ने उस भयंकर आग को अपने मुंह से पी लिया और ग्वाल बालों को दावानल के घोर संकट से छुड़ाया।

मुझे भगवान के ये भजन श्रीकृष्ण की ओर खीच लेते है। महत्व की बात है कि भगवान के और जितने भी अवतार हुये है वे सब अंशकलाधारी आदमी थे। जबकि **'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्'** कृष्ण स्वयम् भगवान थे। इसी कारण से उनको जगह-जगह पर महायोगी, योगेश्वर, योग योगेश्वर, योगाधीश्वर आदि-आदि शब्दो से सम्बोधित किया है। इसलिये श्री कृष्ण चन्द्र पूर्णब्रह्म है। जो उनके चरण कमलों का चिन्तन करेगा, वह सब प्रकार से कृतकृत्य हो जायेगा। ***

यस्तूदारचमत्कारः सदाचारविहारवान्।
स निर्याति जगन्मोहान्मृगेन्द्रः पञ्जरादिव।।
व्यवहारसहस्त्राणि यान्युपायान्ति यान्ति च।
यथाशास्त्रं विहर्तव्यं तेषु व्यक्ता सुखासुखे।।
यथाशास्त्रमनुच्छिन्नां मर्यादा स्वामनुज्झतः।
उपतिष्ठन्ति सर्वाणि रत्नान्यम्बुनिधाविव।।

(योगवशिष्ट ६/२८, ३०, ३१)

जो पुरुष उदार-स्वभाव तथा सत्कर्म के सम्पादन में कुशल है, सदाचार ही जिसका विहार है, वह जगत के मोहपाश से वैसे ही निकल जाता है, जैसे पिजंरे से सिंह। संसार में आने-जाने वाले सहस्त्रों व्यवहार हैं। उनमें सुख और दुःख-बुद्धि का त्याग करके शास्त्रनुकूल आचरण करना चाहिये। शास्त्र के अनुकूल और कभी उच्छिन्न न होने वाली अपनी मर्यादा का जो त्याग नहीं करता, उस पुरुष को समस्त अभीष्ट वस्तुऐं वैसे ही प्राप्त हो जाती हैं, जैसे सागर में गोता लगाने वाले को रत्नापें का समूह!

धारणा शक्ति

परमात्मा की सृष्टि से मनुष्य एक चिन्तनशील प्राणी है। ईश्वर ने इसे प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ बुद्धि प्रदान की है। विचार का गुण मनुष्य की मुख्य विशेषताओं में एक है। विचार एवं कर्म की क्षमता व अधिकार के कारण ही देवता लोग भी मनुष्य शरीर पाने को लालायित रहते है। विचार के साथ-साथ उस विचार को स्थायित्व देकर उसे चित्त में धारण करने की क्षमता भी मनुष्य में है।

'धारणा' शब्द बहुत व्यापक अर्थों में प्रयुक्त होता है। व्यवहार में दृढ़ विचार को हम धारणा कह दिया करते है। साधना में एक ही तत्व का पुनः-पुनः विचार किया जाता है जिसे विचारणा कहते है। यह भी धारणा का ही रूप है। योग शास्त्र के अनुसार अपने मन को एक लक्ष्य पर टिकाने की प्रक्रिया को धारणा कहते है। धारणा की गहराई में पहुँचने के लिये 'समृति' नाम की शक्ति का होना आवश्यक है। समाधि से पूर्व की सीढ़ी स्मृति है। स्मृति ही समाधि का जनक होता है। अनुभव किये हुये अथवा देखे-विचारे वस्तु को न भूलना ही स्मृति है।

किसी भी महान कार्य के लिये दृढ़ संकल्प आवश्यक तत्व है। संसार में जितने भी महापुरुष हुये है वे सभी दृढ़ संकल्प के धनी थे। संकल्प या धारणा की दृढ़ता एवं गहराई से ही किसी व्यक्ति का अपने लक्ष्य के प्रति संवेग देखा जा सकता है। इसे ही आध्यात्म में श्रद्धा और प्रेम का नाम दिया जाता है। धारणा का प्रयोग जब सांसारिक पक्ष में किया जाता है तो उससे बड़े-बड़े कार्य सिद्ध हो जाते है। जब धारणा का प्रयोग अध्यात्म में किया जाता है तो वह अन्तर्ज्ञान को प्रकट करने का उपाय बन जाता है।

धारणा जब यौगिक विधि से की जाती है तो वह शक्ति का स्रोत खोल देती है। हमारे पूर्वज ऋषियों की विशुद्ध धारणा व संकल्प शक्ति के कारण ही उनका जीवन दिव्य एवं उज्ज्वल था। उन्होंने हमारी समस्त धार्मिक क्रियाओं में ऐसी प्रक्रियायें रखी है जो किसी न किसी रूप में ईश्वरीय धारणा में दृढ़ता देने वाली रही है। हमारी पूजा एवं कर्मकाण्ड पद्धतियों में भी क्रियाओं का महत्व नहीं, धारणा का मुख्य स्थान है। गीता में भगवान ने सात्विकी धारणा के विषय में अपने मुखारविन्द से कहा है-

धृत्या यया धारयते मनः प्राणेन्द्रियक्रियाः।
योगेनाव्यभिचारिण्या धृतिः स पार्थ सात्विकी।।

अर्थात्-अनन्य एक निष्ठ, जिस योगज धारणा से मन, प्राण एवं इन्द्रियों की क्रियायें संचालित होती है उसे सात्विकी धारणा कहते है। इस प्रकार की धारणा का विकास यौगिक पद्धति से

समाधि के अंगभूत धारणा, ध्यान के सम्यक् अभ्यास से ही संभव होता है। धारणा की इस गहराई तक पहुँचने के लिये शास्त्र-पठन अथवा सत्संग प्रवचन का सुनना ही पर्याप्त नहीं होता। इसके लिये आवश्यक है साधक आसन पर बैठकर शरीर एवं प्राण को स्थिर करके गुरू परम्परा से प्राप्त साधना का अभ्यास कम से कम ढाई तीन घण्टा प्रतिदिन करें। इस प्रकार से निरन्तर अभ्यास करते रहने पर ही मानसिक विकास संभव है। इस प्रकार अभ्यास करने पर ही हमारे मस्तिष्क में विद्यमान दिव्य अन्तः स्रावी ग्रन्थियों के रस का स्रोत फूटकर मन प्राण एवं इन्द्रियों को दिव्य शक्ति एवं रस से भर देता है। लम्बे समय तक किये गये यौगिक धारणा व ध्यान से ही योगी लोग अद्‌भुत शक्ति सम्पन्न बन जाते है।

योग शास्त्र में कहीं-कहीं सम्प्रज्ञात समाधि के अर्थ बोध को प्रकट करने के लिये धारणा शब्द का भी प्रयोग किया गया है। दत्तात्रेय योग शास्त्र में पार्थिव, जलीय, आग्नेय, वायवीय धारणाओं का वर्णन किया गया है। इस प्रकार की धारणाओं के फल स्वरूप योगी इन तत्वों के सूक्ष्मांश को आकर्षित कर उन पर अधिकार करके भूतजयी सिद्ध होकर अजर अमरत्व को प्राप्त कर लेते है। आनन्द कन्द श्री प्रभु जी ऋषि केश आश्रम में इस प्रकार की भूतजय की साधना ब्र० गोपालानन्द जी को करा रहे थे। हमारे गुरुदेव योगिराज अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज बताया करते थे कि जब वह पंचतत्व साधना करते थे तो उनके शरीर में अद्‌भुत परिवर्तन स्पष्ट दिखाई देता था। जब अग्नि तत्व का आकर्षण करते थे तो उनका शरीर अग्नि का पिण्ड ही बन जाता था। उस समय उनके शरीर को छूना संभव नहीं होता था। इसी प्रकार से जब जल तत्व का आकर्षण करते थे तो शरीर बर्फ की तरह ठण्डा हो जाता था। इस प्रकार की साधना का उद्‌देश्य यह होता है कि योगी पंच तत्वों पर अधिकार प्राप्त करके इनके प्रभाव से अभिघात नहीं होता तथा साथ ही अपने शरीर में इन तत्वों का आकर्षण करके उसे युवा व कल्पान्तजीवी बनाये रखते हैं। हमारे पूर्वजों ने अपनी कठोर साधनामयी जीवन में समग्र सृष्टि के ज्ञान विज्ञान को आत्मसात किया है। उनका वह दिव्य ज्ञान गुरु परम्परा से आज भी हम लोगों को प्राप्त है। तथा शास्त्रों में भी यह ज्ञान निहित है। आज का मनुष्य पूर्णतया कलिमल ग्रसित हो गया है। वह हमारे ऋषियों के मर्यादित, अनुशासित व संयमित जीवन शैली में नहीं जीना चाहता। वह धर्मविरुद्ध, अमर्यादित, उच्छृंखल जीवन जी रहा है। ऐसे में उसे शान्ति कहां से मिल सकेगी ? अत्यधिक भौतिक विचार एवं प्राप्त सुख मनुष्य को धर्म एवं साधना से दूर ले जाता है। मनुष्य भौतिक रूप से कितना ही सुखी व समृद्ध हो जाये किन्तु, तप, स्वाध्याय एवं नैतिक मूल्यों से शून्य जीवन उज्ज्वल व रसमय कदापि नहीं बन सकेगा। यह आवश्यक है कि मनुष्य ऋषियों के योगमय जीवन पद्धति की ओर लौट आवे। भारतवासियों का यह सौभाग्य रहा है कि इस तपः पूत पृथ्वी पर

सदा से ही महापुरुषों ने आकर इसे धन्य किया है। उनके दिव्य जीवन की गाथायें जन-जन में आज भी गुंजायमान है। आज भूले हुये मनुष्य को फिर से आर्ष जीवन पद्धति पर चलने के लिये दृढ़ धारणा बनाकर चलना होगा। आज जहाँ सर्वत्र भारतीय संस्कृति एवं अध्यात्म जीवन शैली पर कुठाराघात हो रहा है वहाँ सन्त महापुरुषों की जन जागरण क्रान्ति भी बढ़ रही है। घर बैठे-बैठे ही टेलीविजन, रेडियो आदि उपकरणों के माध्यम से भी सन्तों के उपदेश व वाणी का श्रवण हम कर सकते है। धर्म प्रचार एवं अध्यात्म संस्थाओं का भी हमारे यहाँ अभाव नही है। इन संस्थाओं के सार्थक प्रयास से लोगों के खानपान रहन-सहन एवं विचारों का शोधन तो अवश्य हो ही रहा है भले ही व्यक्ति अन्तरंग साधना की ओर बढ़ न पा रहा हो। वर्तमान का हमारा यह प्रयास अवश्य ही व्यक्ति की मूल धारणाओं में परिवर्तन लायेगा और स्वस्थ और सुखी समाज का निर्माण होगा। सच्चे अर्थों में धार्मिक व्यक्ति ही अध्यात्म प्रसाद का अधिकारी बनता है। वह व्यक्ति स्वयं को सुखी रखता हुआ दूसरों के प्रति सहिष्णु बन समाज को सन्मार्ग पर लगाता है। आध्यात्मिक व्यक्ति की ही धारणा प्रबल होती है। जिससे उसका उच्च मनोबल बना रहता है। सात्विकी निर्मल धारणा के फलस्वरूप मनुष्य इस देह को छोड़कर ऊर्ध्व ज्ञान व प्रकाशमय-लोकों का वासी बन जाता है जबकि मलिन व पाशविक धारणा का व्यक्ति निम्न योनियों में चला जाता है।

धारणा शक्ति का प्रयोग प्राचीन काल से ही व्यवहारिक जीवन में होता रहा है। चिकित्सा के क्षेत्र में भी इसका प्रयोग किया जा रहा है। उपनिषदों में शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों पर धारणा करके भिन्न-भिन्न रोगों को दूर करने की बात लिखी है। यह भी एक सिद्धान्त मिलता है कि नाभिमण्डल में ध्यान करने से शरीर के समस्त रोग दूर हो जाया करते है। **'सर्वरोग निवृत्ति स्यात् नाभिमण्डले धारणात'।**

आज देश में चिकित्सा क्षेत्र में अनेक पद्धतियाँ पनप रही है। जापान की एक पद्धति 'रेकी' है जिसमे स्पर्श पूर्वक धारणा से रोगी के रोग को दूर कर दिया जाता है। धारणा शक्ति को अर्जित किये बिना यह पद्धति भी सफलत नही हो सकती। योगी महात्मा अपने हाथों के स्पर्श से रोगी को ठीक कर देते है। धारणायुक्त प्राण शक्ति के संचालन से ऐसा सहज ही हो जाया करता है। धारणा मन की एकाग्रता का ही दूसरा नाम है। अज्ञानी एवं विषयी लोगों की आभ्यन्तर शक्ति अहर्निश इन्द्रिय द्वारों से बाहर निःसृत होती रहती है। योगी लोग अपने इन्द्रिय द्वारों को संयमित कर धारण शक्ति को विकसित कर अध्यात्म साधना में इसका उपयोग करते हैं। समस्त अलौकिक शक्तियों के संग्रह का आधार धारणा ही है।

* * *

सिद्धदेह की प्राप्ति के उपाय

प्रो० आचार्य चन्द्रहास शर्मा (दिल्ली)

योग साधना के लिए सुदृढ़ शरीर की आवश्यकता है। गोरक्ष प्रभृति योगाचार्यों ने शरीर दृढ़ता को घटसिद्धि या घड़े को पकाने का नाम दिया है। जिस प्रकार कच्चे घड़े के द्वारा नदी पार करना असम्भव है, उसी प्रकार शरीर में नाना-प्रकार की आधि-व्याधियों के विद्यमान रहते जीवन का परमसुख पाना तो दूर की बात है, विषय सुखपाना भी दुष्कर है। महाकवि कालिदास ने ठीक ही कहा है-**शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम्'** अर्थात् शरीर का स्वास्थ्य धर्म साधना की प्रथम सीढ़ी है।, कठोपनिषद् में भी इसी बात को रेखांकित किया गया है **'नायमात्मा बलहीनेन लभ्य:'** आत्म साक्षात्कार बलहीन व्यक्ति के बूते की बात नहीं है। स्वामी विवेकानन्द कहा करते थे कि बीमार होने से बढ़कर दूसरा कोई पाप नहीं है। सिद्धयोग परम्परा में ऐसे शिष्य को शक्तिपात का अधिकारी नहीं माना गया है जो आठ महारोगों में से (क्षय, गुल्म, कुष्ठ, दमा, बवासीर, कैंसर आदि) किसी रोग से ग्रसित हो। जो गुरू भी इन महारोगों से ग्रसित हो, उसे भी दीक्षा देने का अधिकार नहीं है। योग में पूर्णता प्राप्त करने के लिए सर्वप्रथम हठयोग द्वारा शरीर को नीरोग बनाना आवश्यक है। जब शरीर में प्राणशक्ति ठीक-ठीक कार्य करती है तभी मन और चित्त मंत्र और लय योग द्वारा परम सत्ता में विलीन होकर तदाकार होता है। इसलिये इस शरीर रूपी आत्मा के यंत्र की वैज्ञानिक जानकारी साधक को अवश्य करनी चाहिये। जैसे गाड़ी चलाने वाला ड्राइवर गाड़ी में तेल, पानी, हवा तथा ब्रेक आदि की चलने से पहले जाँच कर लेता है। जहाँ जो कमी होती है, उसे ठीक करने का उपाय करना जानता है, वही अपनी मंजिल तक पहुँचने में सफल होता है। माता-पिता के द्वारा प्राप्त शरीर नाना-प्रकार के आनुवंशिक रोगों, पाप पुण्यात्मक कर्मों संवेगों तथा त्रिगुणात्मक प्रकृति की भावात्मक तरंगों से चंचल, अस्थिर तथा विकारग्रस्त होता है। जैसे कच्चे घड़े में शुद्ध जल डाला जाय तो घड़ा उसे संभाल कर रख पाने में असमर्थ होता है। बल्कि घड़ा फूट जाता है और शुद्धजल भी मिट्टी के संयोग से मलिन हो जाता है। वही घड़ा अग्नि में तपाकर पक्का कर लेने पर जल रखने में सक्षम हो जाता है। उसी प्रकार कामना, रोग और वासना से यह शरीर अपरिपक्व बना रहता है। ऐसे शरीर को ही **'शरीरम् व्याधिमन्दिरम्'** कहा गया है। जब हठयोग और क्रियायोग के अभ्यास से शरीर का नाड़ी जाल शुद्ध कर लिया जाता है, तो यह हाड़-मांस और मलमूत्र का अपवित्र शरीर देवालय बन जाता है, पावन बन जाता है। इसका स्पर्श और वन्दन अपावन को भी पावन कर देता है। यह तभी होता है, जब साधक योगाभ्यास की ठीक-ठीक प्रक्रिया किसी परिपूर्ण ऐसे सद्गुरु से सीखे ले जिनका अपने शरीर की वायु पर पूर्ण अधिकार है तथा शिव और शक्ति का साम्य कराने की क्षमता रखते हो, अपने शिष्य के प्राणकोष को इच्छित दिशा में गतिशील कराने का विज्ञान जानते हो। कनफूका या नाम दान या मंत्र देने वाले तथाकथित गुरुओं के वश की बात नहीं है कि वे इस अपावन शरीर को देवालय बना सकें। जिसको शरीर के दसों द्वारों का पता है, दस महानाड़ियों का पथ ज्ञात है, उनमें व्याप्त दस प्रकार की वायु पर पूर्ण अधिकार है, इन्द्रियों पर जय है।

शोडषाधारों की जानकारी है, पंच महाव्योम, नाद, विन्दु, कला, शिव और शक्ति, कुण्डलिनी की गति आदि विज्ञान में पूर्ण निष्णात कोई सद्गुरु ही इस शरीर को देव मन्दिर बनाकर कृतकृत्य कर सकता है। तब यह देह व्याधि मन्दिर से देवालय बन जाता है तभी योग सिद्धि प्राप्त होती है। शिव-शक्ति का निकेतन होकर यही शरीर अद्‌भुत सामर्थ्य वाला बन जाता है। देवता भी योगी के शरीर का वन्दन करते हैं। इस अवस्था के शरीर के लिए ही शास्त्रकारों ने कहा है-

देहो देवालयः प्रोक्तः स जीवः केवलः शिवः।
त्यतेज् अज्ञान निर्माल्यं सोऽहम् भावेन पूजयेत्।।

जब अज्ञानरूपी माला हट जाती है तब यह जीव केवल शिव हो जाता है। इसका पूजन श्वास-प्रश्वास के अजपा जप से निरन्तर चलने लगता है। यह शरीर देवालय कहलाने का अधिकारी हो जाता है। अतः योगाग्नि से इस कच्ची देह को पक्वदेह बनाना साधक का प्रथम कर्तव्य है। यदि शरीर अपक्व है तो चाहे ध्यानी बन जाय या ज्ञानी बन जाय, क्षणभर के दुःख, शोक, व्याधि, अपमान, निन्दा या भौतिक, दैविक विपत्तियों से मन विचलित होकर वृत्ति सारूप्य होने में देर नहीं लगती। प्राणों पर विपत्ति आ जाने पर शरीरस्थ वायु भी क्षुब्ध होकर चित्त को चंचल बना डालती है। देहान्त के समय दुःखों के आघात से चलायमान चित्त जैसी भावना कर लेता है, वैसी ही योनि में उसका जन्म हो जाया करता है। अज्ञान और अविद्या के चक्कर में पड़ा हुआ यह जीव यह नहीं जान पाता कि उसका अगला जन्म कहाँ और कैसा होगा ? ज्ञान और वैराग्य की जीवन भर की साधना क्षणभर के झंझावात से काफूर हो जाती है। ध्यान करने में यदि चींटी के काटने भर से ही ध्यानभंग हो सकता है तब मृत्यु के समय हजारों बिच्छुओं के काटने का प्राण कष्ट होने पर क्या सुख की योनियों की भावना कर सकता है ? असम्भव है। इसलिए वृथा तर्कजाल में समय नष्ट न कर साधना के अभ्यास से शरीर इन्द्रिय, मन, चित्त और बुद्धि को ऐसा कूटस्थ बना लें कि अपने सच्चिदानन्द स्वभाव से किसी भी प्रकार की परिस्थिति उपस्थित होने पर साधक च्युत न हो सके। अपनी देह बुद्धि को जब तक नष्ट नहीं करेंगे तब तक अहंकार का नाश नहीं होगा। कारण के रहते कार्य की सम्भावना बनी रहेगी। इसलिए पंचभूतमय, सप्त धातुमय तथा दशेन्द्रियों युक्त इस शरीर को आकाश के समान निर्मल और व्यापक बनाने के लिए योग क्रियाओं का विधिवत् अभ्यास करना चाहिये। जिसने अपने शरीर, इन्द्रियों और मन को अपने वश में कर लिया उसका अग्नि, वायु, जल या काम, क्रोध, मान-अपमान आदि क्या बिगाड़ सकते हैं ? योगी का शरीर **'सिद्धदेह'** कहलाता है। उसके अपार बल की थाह देवता भी नहीं लगा सकते। सिद्धदेह में ऊणिमा, महिमा, गरिमा आदि अष्ट सिद्धियाँ स्वतः आ जाती हैं। वह स्थूल से स्थूल और सूक्ष्म से सूक्ष्म हो जाने की सामर्थ्य वाला बन जाता है। योगी की सिद्धदेह के विषय में योग शिखोपनिषद् में कहा गया है-

इच्छारूपो हि योगीन्द्रः स्वतंत्रस्त्वजरामरः।
क्रीडते त्रिषु लोकेषु लीलया यत्र कुत्रचित्।।
अचिन्त्य शक्तिमान् योगी नानारूपाणि धारयेत्।
संहरेच्च पुनस्तानि स्वेच्छया विजितेन्द्रियः।।

नासौ मरण माप्नोति पुनर्योग बलेन तु।
हठेन मृत एवासौ मृतस्य मरणं कुतः।।
मरणं यत्र सर्वेषां तत्रासौ परिजीवति।
यत्र जीवन्ति मूढास्तु तत्रासौ मृत एव वै।। १/४३-४६

कर्त्तव्यं नैव तस्यास्ति कृतेनासौ न लिप्यते।
जीवन्मुक्तः सदा स्वच्छः सर्वदोष विवर्जितः।।
विरक्ता ज्ञानिनश्चान्ये देहेन विजिताः सदा।
ते कथं योगिभिस्तुल्या मां सपिण्डाः कुदेहिनः।।

देहान्ते ज्ञानिभिः पुण्यात् पापाच्च फलमाप्यते।
ईदृशं तु भवेत् तत्तद् मुक्तवा ज्ञानी पुनर्भवेत्।।
पश्चात् पुण्येन लभते सिद्धेन सह संगतिम्।
ततः सिद्धस्य कृपया योगी भवति नान्यथा।।

ततो नश्यति संसारो नान्यथा शिवभाषितम्।
योगेन रहितं ज्ञानं न मोक्षायं भवेद्विधे।।
ज्ञानेनैव विना योगो न सिध्यति कदाचन।
जन्मान्तरैश्च बहुर्भियोगो ज्ञानेन लभ्यते।।

ज्ञानं तु जन्मनैकेन योगादेव प्रजायते।
तस्माद्योगात् परतरो नास्ति मार्गस्तु मोक्षदः।।५३

अर्थात् जिन योगियों ने किसी सिद्धगुरु के चरण कमलों का आश्रय ग्रहण कर उनकी शिक्षाओं का अक्षरशः पालन कर अपनी साधना को चमका लिया है, वे अपने शरीर मन, इन्द्रिय, बुद्धि, प्राण और बुद्धि के द्वन्द्वजाल को जीतकर निश्चिन्त हो जाते है। वे प्रकृति के द्वन्द्वजाल से मुक्त होकर स्वतन्त्र, अजर-अमर अपनी इच्छा से निर्बाध गमन करने की सामर्थ्य प्राप्त कर लेते हैं। नाना प्रकार के शरीर और चित्त निर्माण की योग्यता प्राप्त कर वे अपने शिष्यों के सामने उपस्थित हो जाते हैं। उनका शरीर चिदानन्दमय होता है। जब जैसे चाहे वहाँ वैसा ही रूप बना सकते हैं। हठयोग के अभ्यास से उन्होंने अपने नकली शरीर को नष्टकर दिया है और अपने चिदानन्द स्वरूप में स्थित हो गये है। जिन्होंने अपने को मार लिया है उनको मृत्यु कैसे मार सकती है ? जिस मृत्यु से सभी डरते है, योगी उसका स्वागत करते है। मृत्यु के सिर पर पैर रखकर आगे जाने की सामर्थ्य योगी के सिवाय किसी में नहीं होती। मूढ़ अज्ञानी जन जिन नश्वर सांसारिक पदार्थों के प्रति आसक्त होते है, योगी जन उनके प्रति मृत की तरह अनासक्त रहते है। वे शाश्वत, अनश्वर परमात्म सत्ता में निरन्तर जीवित रहते हैं। मूढ़ जन उसके प्रति अनभिज्ञ और मृत के समान बने रहते है। मल, आवरण और विक्षेप से रहित होकर योगी जीवन मुक्त अवस्था का आनन्द लेते है। उनके लिए कोई कर्म बन्धन

नही होता। ज्ञानी जन वैराग्ययुक्त होने पर भी मांसपिण्ड के अपने शरीर के वात-पित्त कफ दोष तथा कामक्रोधादि उद्वेगों के वश में होते है। ज्ञानी देहान्त के पश्चात् पुण्य पाप कर्मानुसार सुखी या दुःखमय योनियों में जन्म ग्रहण करते है। तत्तद् कर्म फलों को भोगकर पुनः जन्ममरण के चक्कर में पड़ जाते है। यदि उनके पुण्य कर्मों का खजाना बढ़ता चला जाय तो पुण्य कर्म फलों के प्रभाव से किसी सिद्धयोगिराज सद्गुरु का सत्संग पाकर उनके शक्तिपात से अपने अन्दर के चक्र और ग्रन्थियाँ खोलकर वे योगी बनकर कृतकृत्य होते है फिर उन्हें त्रिगुणात्मक संसार बाधा नही पहुँचा पाता। बिना योग के कोरा ज्ञान मोक्ष प्राप्ति का उपाय नही बन पाता। केवल नेति, धौति, नौली बस्ती, आसन, प्राणायाम आदि का अभ्यास करके बिना आत्मज्ञान के भी मोक्ष नही होता। बहुत जन्मों में जाकर ज्ञानी का ज्ञान पूर्ण सिद्धिदाता बन पाता है। किन्तु यदि कोई समर्थ सद्गुरु कृपा कर दे तो एक ही जन्म में योग विद्या से पूर्ण ज्ञान विज्ञान सिद्ध हो जाता है। इसीलिए भगवान सदाशिव का उद्घोष है कि योग से बढ़कर आत्म कल्याण का कोई दूसरा भरोसे का मार्ग नही है। यदि संस्कार वश परिपक्वता लाभ होने से पहले ही शरीर त्याग हो गया तो योगी को अगला जन्म योग के पुण्य प्रभाव से श्रीमान अथवा योगी के घर में ही मिलता है। जहाँ जन्म लेते ही उसे पूर्वजन्म में तय किये हुये मार्ग से आगे की मंजिल पर चलने का वातावरण और अवसर मिल जाया करता है। योग साधक के दोनों हाथो में लड्डू रहते है। योगसाधना में शीघ्र सिद्धि प्राप्त करने के लिए प्राणजय के सिद्ध उपायों का अवलम्बन लेना चाहिए। यद्यपि वे उपाय सर्वजन प्रकाश्य नही है। केवल अधिकारी को ही उनका उपदेश करने का शास्त्रानुशासन है। तथापि संक्षेप में उनमें से कुछ सामान्य उपायों का उल्लेख यहाँ करने का प्रयास किया जायेगा।

हमारा शरीर यंत्र–हमारा शरीर ही ब्रह्माण्ड का सूक्ष्म रूप है। इसीलिए यह एक प्रसिद्ध उक्ति है–**'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे'**। अर्थात् जो इस पिण्ड (शरीर) में है, वही इस ब्रह्माण्ड में है। इस शरीर के सम्पूर्ण विज्ञान को जानकर साधक ब्रह्माण्डीय शक्तियों पर अधिकार प्राप्त कर सकता है। इस शरीर रूपी यंत्र से ही अव्यक्त सत्ता का अनुभव होता है। शरीर के बिना इसका अनुभव होना सम्भव नही है। इसीलिए वराहोपनिषद् में कहा गया है **'नाडीनामाश्रये पिण्डो नाडयः प्राणस्य चाश्रयः। जीवस्य निलयः प्राणी, जीवो हसस्य चाश्रयः।। हसः शक्तरधिष्ठानम् चराचर मिदजगत्।'** शरीर के यंत्र को जितना निर्दोष और शुद्ध रखा जायेगा उतना ही सूक्ष्म अनुभूति करना आसान होगा। हमारा शरीर छ्यानवे अंगुल (९६ अंगुल) के बराबर लम्बा है। इसका मध्यभाग नाभिचक्र के पास का स्थान है। यह बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। यही पर पंचाग्नियों का केन्द्र है। यही पर प्राणशकित का केन्द्र है। इसके नीचे इच्छा और क्रिया शकित का केन्द्र है। शरीर यद्यपि विरोधी पंचभूतों से मिलकर बना है। पृथ्वी और जल में विरोध है। जल और अग्नि में विरोध है। अग्नि और वायु में विरोध है। वायु आकाश में विलीन हो जाती है। फिर भी परस्पर संयोग से इसमें प्राणशकित की क्रिया से पंच आकाश, सोलह आधार, त्रिलक्ष्य, नौचक्र, उनचास वायु, दस प्राण, चौदह नाड़ियाँ, बहत्तर हजार सूक्ष्म नाड़ियाँ और तीन सौ साठ अस्थियाँ तथा इक्कीस हजार छः सौ श्वास प्रश्वास

की दिन-रात में क्रिया विद्यमान रहती है। यह यंत्र कर्म संसार के अनुसार जीवन यात्रा मे सहायक बनता है। छियानवें अंगुल शरीर में बारह अंगुल परिमित प्राण मण्डल इस शरीर को चैतन्य रखता है। छियानवे और बारह अंगुल मिलकर एक सौ आठ बनता है। इसमें प्राण की चिद् और ऐश्वर्य सत्ता श्री श्री रूप मे मिलकर श्री श्री १०८ बनता है। इसके आगे श्री श्री १००८ या अनन्त श्री बनने के लिए अपनी प्राण शक्ति के आभा मण्डल को उतनी गुना परिधि में व्याप्त करना पड़ेगा। केवल लिख देने मात्र से कोई श्री श्री १००८ नही हो सकता। जिसका नाड़ी मण्डल शुद्ध हो चुका है और प्राण और अपान को एकत्र कर उदान के द्वारा प्राणशक्ति को चतुर्दिक व्याप्त करने की साधना कर प्राणों पर अधिकार करने वाला योगी श्री श्री १००८ हो पाता है। फिर अनन्त श्री विभूषित होने के लिए षट्चक्र बेधन, ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रग्रन्थियों का भेदन करके चित्ताकाश से चलकर चिदाकाश में अवस्थान करने की सामर्थ्य आवश्यक है। भोले भाले लोगों को बहकाने और स्वयं को पुजवाने के चक्कर में ठीक से १००८ अंगुल की परिधि की प्राप्ति के बिना ही लोग अपने को अनन्त श्री विभूषित लिखने लगते हैं।

हमारे शरीर में वैसे तो प्राण तिल में तेल की तरह सर्वत्र व्याप्त है। तथापि नासाग्र मुख, भ्रूमध्य नाभिमध्य और पादागुंष्ठ मे प्राणऊर्जा के विशेष केन्द्र है। इन केन्द्रों के माध्यम से प्राणों का प्रसार सर्वत्र करने में आसानी रहती है। नासाग्र पर मन को एकाग्र करने से शरीर नाड़ीगत वायु नियंत्रित हो जाती है। नाभिमध्य में धारणा करने से कष्ट साध्य रोग दूर हो जाते है। पादागुंष्ठ में मन की धारणा करते रहने से शरीर की स्थूलता और आलस्य दूर हो जाता है। इन स्थानों में प्राणों का आकर्षण करने के पश्चात् शरीर के अन्दर नाड़ी मण्डल में प्राण का प्रसार करने से उन स्थानों में रहने वाले दोष दूर होकर आरोग्य लाभ हो जाता है। इन नाड़ी मार्गों मे प्राण के साथ मन सर्वत्र दौड़ता रहता है। हमारे शरीर में बहत्तर हजार नाड़ियों का जाल उसी प्रकार शरीर में व्याप्त है, जिस प्रकार पीपल के कोमल पत्ते में नाड़ियों का जाल दिखाई देता है। मन को बाह्य विषयों से लौटाकर केन्द्रों पर लाने के लिए अठारह मर्म स्थानों पर मन की धारणा कर जो भी क्रिया की जाती थी उसका प्रभाव उन मर्म स्थानों से जुड़े अवयवों पर पड़ता है। अठारह मर्म स्थानों मे मुख्य है-पैर के अंगूठे, गुल्फ (टखना), जंघा, जानु (घुटना) गुदा, मेढ्र (तलहटी), नाभि, हृदय, कण्ठकूप, तालु, नाक, नेत्र गोलक, भ्रूमध्य, ललाट, मूर्धा आदि।

इससे भी महत्वपूर्ण प्राणशक्ति के केन्द्र कुण्डलिनी शक्ति का स्थान है। इसका सम्बन्ध नाड़ी कन्द से है। नाड़ी कन्द का स्थान गुदा से दो अंगुल ऊपर तथा मेढ्र (पेडू) से दो अंगुल नीचे है। पशुओं का यह स्थान हृदय के मध्य में है तथा पक्षियों का उदर के मध्य में है। इसी कन्द के मध्यम में सुषुम्ना नाड़ी कमल नाल की रेशे की तरह सूक्ष्म है जो सीधी होकर ऊपर की ओर गमन करती है। उसके बायें-दायें इड़ा पिंगला नाड़ियाँ है। उन्ही के साथ गान्धारी और हस्ति जिह्वा नाम की नाड़ियाँ है। गुदा से लेकर दांये कान तक अलम्बुषा नाड़ी है। मेढ्रान्त तक नीचे एक शुभा नाम की नाड़ी गयी है। कौशिकी नामक नाड़ी पादांगुष्ठ पर्यन्त बायी है। इस प्रकार कन्द से चारों ओर दस प्रकार की नाड़ियाँ व्याप्त है। इन नाड़ियों की स्थिति जानकर कन्द के मध्यस्थ सुषुम्ना नाड़ी पर

धारणा करके पूरे शरीर चक्र को चैतन्य और स्वस्थ रखने में सहायता मिलती है। मुख, नासिका, हृदय, नाभिमण्डल तथा पादांगुष्ठ में प्राणों के मुख्य केन्द्र हैं। इन केन्द्रों से ही ब्रह्माण्डीय चेतना से सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है। नाड़ियों में विभिन्न प्राणवायु का क्षेत्र है। यथा-अपान नामक प्राण गुदा, मेढ्र और जानु में संचरित होता है। समान पूरे शरीर में संचरित होकर शरीर की व्यवस्था करता है। उदान का स्थान सभी सन्धियों तथा हाथ और पैरों में है। व्यान का स्थान कान, ऊरू, कमर गुल्फ, स्कन्ध तथा गले में है। नागादि वायु त्वचा तथा अस्थि आदि में अपना कार्य करती है। प्राणवायु उदरस्थ जल, अन्न, रस का पाचन कर उसे रक्त आदि में पृथक्-पृथक् करती है। अपान से मल मूत्र विसर्जन कार्य होता है। व्यान वायु प्राण अयाम को सक्रिय करने का कार्य करती है। उदान वायु से ऊर्ध्व गमन क्रिया होती है। समान वायु शरीर का पोषण करती है। नाग का कार्य डकार लेना, कर्म वायु का कार्य आँख का खोलना-बन्द करना, कृकर वायु का कार्य भूख की अनुभूति कराना, देव दत्त वायु का कार्य नींद लाना तथा धनंजय वायु का कार्य मृत शरीर को खण्ड-खण्ड होने से रोके रहना है।

अपने शरीर और मन को स्वस्थ रखने के लिए वायु के उपर्युक्त स्थानों को जानकर चिन्मुद्रा में स्थित होकर जिस अंग में रोग हो वहाँ प्राणों को रोककर तेज या ज्योति की धारणा करने से रोग से मुक्ति मिल जाती है। चिन्मुद्रा प्राणों का संयमित करने के पूर्व की स्थिति है। शान्त सीधे किसी आसन पर बैठकर नासिकाग्र पर दृष्टि एकाग्रकर ऊपर के दाँतों से नीचे के दांत मिलाकर जीभ को तालु में लगाकर सिर को ऊपर की ओर खींचकर योगमुद्रा की रीति से हाथ रखकर प्राणों का पूरक कुम्भक रेचक कार्य करना चिन्मुद्रा है।

योगमुद्रा में जालंधर, उड्डियान तथा मूल बन्ध लगाकर प्राणों को इच्छित स्थान पर एकत्रित कर व्याप्त करना होता है। नाभिकन्द में प्राणों की धारणा करने से कुक्षिगत समस्त रोग दूर होते हैं। नासाग्र में प्राण धारण करने से दीर्घायु तथा शरीर में हल्कापन प्राप्त होते हैं। यदि तीन महीने तक जीभ के अग्रभाग से प्रातः ब्रह्ममुहूर्त में वायु का पान किया जाय तो बचन सिद्धि होती है। छः महीने इसका अभ्यास किया जाय तो महारोग से छुटकारा मिल जाता है। इस प्रकार जहाँ-जहाँ रोग हो वहाँ-वहाँ कुम्भक का अभ्यास करने से वहाँ-वहाँ के रोग नष्ट होते हैं। जैसे गुदा, ऊरू, जंघा, उदर, कटिभाग, नाभि या जंघाओं में कोई रोग हो जाय तो अपान वायु को लक्ष्य बनाकर कुम्भक कर दो घण्टे अभ्यास करने से इन-इन स्थानों के कष्ट निवृत्त हो सकते हैं। वायु और पित्तज रोगों की शान्ति के लिए जिह्वा से वायु को धीरे-धीरे पीकर नाभि में अमृत की भावना करते हुये कुम्भक करना चाहिये। नेत्र रोगों में दोनों नासिकाओं से वायु को खींचकर जालंधर बन्द लगाकर नेत्र गोलकों में वायु को रोकने का अभ्यास करें। शिरो रोगों में सिर में पूर्व रीति से वायु को रोकने का अभ्यास करना चाहिये।

मानसिक विकारों को छोटी-छोटी युक्तियों से दूर किया जा सकता है। जैसे कोई व्यक्ति पहले सौ-दो सौ रुपये से व्यापार करना शुरू करता है और कुछ दिन बाद लाखों और करोड़ों रुपये का

कारोबार करने लग जाता है। उसी प्रकार छोटी-छोटी क्रियाओं पर ध्यान देकर साधक को सदा अभ्यास तत्पर बना रहना चाहिये। दृढ़ निश्चयपूर्वक किया गया गुरुभक्त का अभ्यास एक दिन अवश्य रंग लाता है। हमारे अन्दर काम क्रोध श्वास की अस्थिरता (घबराहट) भय और निद्रा, आलस्य की मात्रा साधना में प्रायः विघ्न उपस्थित करती है। इन विघ्नों पर विजय पाने के लिए साधक को निम्नलिखित उपाय करने चाहिये। प्रथम प्रतिपक्ष भावना का विस्तार चिन्तन द्वारा करना चाहिये। जैसे काम का कारण संकल्प और चेष्टा है। उसकी विपरीत भावना है। निःसंकल्पता और निश्चेष्टता क्रोध का कारण इच्छा में बाधा होना है। उसे दूर करने के लिए हर समय क्षमाशीलता की भावना करनी चाहिये। क्रोध का प्रसंग उपस्थित होने पर भावना करनी चाहिये कि 'चलो क्षमा किया।' इतना सोचते मन की गांठ खुल जायेगी। तनाव दूर हो जायेगा। चेतना का स्फुरण ऊर्ध्वमुखी होने लगेगा। शान्ति और सुख की शीतलता का अहसास होगा। श्वासगति की विषमता (घबराहट, तनाव, चिन्ता) दूर करने का सरल उपाय-लघु आहार सेवन है। हितकारक मितभोजन करके प्राणायाम के त्रिबन्धों का अभ्यास करने से इस कष्ट से छुटकारा मिल जायेगा। प्रत्येक साधक को प्रतिदिन महामुद्रा का अवश्य अभ्यास करना चाहिये। इसकी विधि है-दांये पैर को फैलाकर बायें पैर की एड़ी को गुदा स्थान और प्रजनन अंगों के बीच भाग को दबाकर एक हाथ से फिर दोनों हाथों से दायें पैर के अंगूठे को पकड़कर दोनों नासिका रन्ध्रों से श्वास भरकर कण्ठ में ठोड़ी को लगाकर भ्रूमध्य में अमृत वर्षा की भावना करते हुए यथा शक्ति कुम्भक की स्थिति में ठहरना। फिर धीरे-धीरे वायु का जालंधर बन्ध मुक्त कर रेचन करना चाहिये। इससे अनेक कष्ट सरलता से दूर हो जायेंगे। भय हमेशा द्वितीय या पराया भाव रहने पर होता है। उसकी निवृत्ति का उपाय प्रह्लाद की भांति सर्वत्र एक परमेश्वर की भावना करने से हो जाता है। निद्रा और आलस्य दूर करने के लिए भ्रूमध्य मे ज्योति की भावना एवं धारणा करनी चाहिये। यदि भ्रूमध्य में अभ्यास करने पर सिरदर्द अनुभव हो तो नाभि के नीचे-मूलाधार में बिजली की चमक की भावना करते हुए कुण्डलिनी शक्ति की धारणा करने से निद्रा, आलस्य, प्रमाद आदि नष्ट हो जाते है। इसमें भी सफलता न मिले तो तर्जनी अंगुली से कानों को बन्द कर अन्दर की ध्वनि को सुनते हुए नेत्र गोलकों में नीली ज्योति की धारणा करनी चाहिये अथवा हृदय मे ऐसी ही धारणा करनी चाहिये।

अकेली महामुद्रा का अभ्यास ही योग साधकों को सर्व सिद्धि का दाता माना गया है। योगाचार्यों का कथन है कि महामुद्रा के अभ्यास से समस्त नाड़ियों के वात-पित्त-कफ का शोधन हो जाता है। सूर्य और चन्द्र नाड़ियों की एकता स्थापित हो जाती है। दूषित पदार्थों का शोषण होकर शरीर नीरोग हो जाता है। इसके सम्बन्ध मे कहा गया है-

न हि पथ्यमपथ्यं वा रसाः सर्वेऽपि नीरसाः।
अतिभुक्तं विषं घोरं पीयूषमिव जीर्यते।।
क्षयकुष्ठ गुदावर्त गुल्माजीर्ण पुरोगमाः।
तस्य रोगाः क्षयं यान्ति महामुद्रां तु योऽभ्यसेत्।।

कथितेयं महामुद्रा महासिद्धिकरी नृणाम्।
गोपनीया प्रयत्नेन न देया यस्य कस्यचित्।।

अर्थात्–महामुद्रा के अभ्यास से साधक को पथ्यापथ्य का विचार करने की आवश्यकता नही रहती। वात-पित्त-कफ सभी समावस्था में हो जाते हैं। यदि भूल से साधक कालकूट विष भी खा ले तो वह अमृत की तरह साधक का पोषण करने वाला हो जाता है। क्षय (टी.बी) कोढ़ गुदावर्त, बबासीर, वायु गोला, गांठ, अजीर्ण, जैसे कष्टसाध्य रोग भी महामुद्रा के अभ्यास से नष्ट हो जाते हैं। यह महामुद्रा महासिद्धि देने वाली है। शास्त्र का आदेश है कि इस महामुद्रा का उपदेश गुरुभक्त अधिकारी को ही देना चाहिये, हर एक को नही बताना चाहिये। यह गुप्त विद्या है। क्योंकि इसका अभ्यासी बड़ी से बड़ी शक्तियों को प्राप्त करने की सामर्थ्य प्राप्त कर लेता है। यदि वह अहंकारी हुआ तो उन शक्तियों का प्रयोग दूसरों के कल्याण की अपेक्षा कष्ट देने के लिए करने लगेगा।

हठयोग, मंत्रयोग, लययोग, ध्यानयोग, राजयोग, तथा भक्ति योग आदि सभी प्रकार के योगों मे सिद्ध देह का विज्ञान विद्यमान है। साधक किसी भी स्तर से साधना करे '**नारायण और नगर के दादू पंथ अनेक** सबका गन्तव्य एक सच्चिदानन्द परम पुरुष ही है। उन्मनी अवस्था, अमनस्कता तथा अद्वैत स्थिति प्राप्त किये बिना अमृत तत्व का रसास्वादन नहीं होता। आनन्द सागर में डूबे बिना यह नश्वर देह सिद्ध देह नहीं हो पाता। इसके लिए मूल बन्ध, उड्डियान बन्ध, जालन्धर बन्ध की आधारभूत साधना अति आवश्यक है। शरीर पंचतत्वों से बना है। यदि इसमें पृथ्वी तत्व की कमी हो जाय तो झुर्रियाँ पड़ने लगती हैं। जल तत्व की कमी से बालों में सफेदी आती है। अग्नितत्व की कमी से तेज और भूख क्षीण होने लगते है। वायु की कमी से शरीर में कम्पन और आकाश तत्व की कमी से प्राणशक्ति क्षीण होने लगती है। इनकी कमी पूरी करने के लिए पंचतत्वों की धारणा करनी चाहिये। इसको करने के उपायों का उल्लेख विस्तार से फिर किसी लेख में करेंगे।

इसके बाद सिद्धासन, पद्मासन, वज्रासन आदि आसन सिद्धि, कुम्भक प्राणायाम सिद्धि, विभिन्न मुद्राओं की सिद्धि, जैसे–विपरीतकरणी मुद्रा, चिन्मुद्रा, योगमुद्रा, महामुद्रा, शाम्भवी मुद्रा, खेचरी मुद्रा, अमरौली, बज्रौली, सहजौली अमृतकारणी मुद्रा आदि की परिपक्वता से उद्भूत सहज समाधि की अवस्था आवश्यक है। इस मार्ग पर चलकर योगी विष्णु के उस परमपद का अधिकारी बनता है। जहाँ मृत्यु का साम्राज्य नही है, अपितु अमृत का सागर परिव्याप्त है। उसका पान कर योगी तृप्त हो जाता है, कृतकृत्य हो जाता है। उस अवस्था में पहुँचने पर उसे परमहंस, अवधूत, मुक्त, सिद्ध आदि कहा जाता है। उसका दर्शन स्मरण और संयोग, सेवा या ध्यान करने से शिष्य अनुग्रह लाभ कर संसार सागर से पार हो जाता है। ऐसे कृतात्मा की एक सौ एक पीढ़ियाँ मुक्त हो जाती हैं उसके माता–पिता, पत्नी,, बन्धु–बांधव पुत्रादि का तो कहना ही क्या ? वे उसके साक्षात् सम्बन्ध से मुक्त हो जाते हैं। जहाँ उनकी चरण रज होती है, वह स्थान पवित्र तीर्थ बन जाता है। उसकी सेवा करने से मूर्ख और अज्ञानी भी मुक्ति लाभ करता है। सिद्धदेह चिन्मय सत्ता का अधिष्ठान होता है। मांसपिण्डदेह की भांति उसमें विकार नही होते। निर्विकार, आकाश की भांति निर्मल और सर्वत्र व्याप्त अमृतरस संसिक्त यह सिद्धदेह हमारे लिए अपने सद्गुरु रूप में नित्य वन्दनीय और ध्यान का आलम्बन है। सब साधकों का सद्गुरुदेव कल्याण करें। ⁕⁕⁕

ब्रह्मचर्य और योग

—स्वामी डा० केशवाचार्य (बड़ौदा)

योग भारतवर्ष की बहुत ही प्राचीन सम्पत्ति है। यह भारतवर्ष के गौरव एवं मान की वस्तु है। इसका प्रभाव धर्म और सम्प्रदाय मात्र पर पड़ा है। भारतीय शास्त्रों मे योग पर बड़ी-बड़ी रोचक मनोहर एवं विचित्र कथाएँ लिखी हुई है। योग के सम्बन्ध में यहाँ वृद्धोक्ति और किवंदन्तियो की भी कमी नहीं है। यौगिक तत्वों पर भारत वर्ष मे स्वतन्त्र ग्रन्थ भी बहुत लिखे गये है, जिनमे पातञ्जलि योग दर्शन ऐसा उत्तम दर्शन है जो भारतीय प्रधान छः शास्त्र दर्शनों में से एक दर्शन शास्त्र है। दार्शनिक विचार कितने ऊँचे, पवित्र और रहस्यमय होते है इसको कोई भी बुद्धिमान पुरुष मान सकता है। दार्शनिक तत्व होने से ही योगी की गहनता, महत्ता, दिव्यता का पता लग जाता है कि योग कितनी कठिन समस्या का नाम है। इस योग की महान सिद्धि के लिए हमारे पूर्वजों ने हजारों वर्षों तक कितने ही प्रयत्न कितनी ही संख्याओं मे किये है। जिस पर भी उनमें से कोई एक ही योग की परम सिद्धियों को प्राप्त कर सका है।

मनुष्याणां सहस्त्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्वतः।। गीता ६/३

''प्रयत्नशील हजारों पुरुषों में से कोई एक पुरुष ही योग की सिद्धि (यथार्थ मार्ग) को प्राप्त किया करता है। और उस यथार्थ गामी हजारों सिद्धो में से कोई एक ही मेरे तत्व को जाना करता है।' इस श्लोक मे **'सिद्धये'** और **'मां वेत्ति तत्वतः'** शब्द योग के रहस्य और तत्व को बतला रहे है। प्रथम शब्द योग के कपाट खोलने की कुंजी है। तो दूसरा शब्द योग की गुप्त गुहा में रखे हुए दिव्य ईश्वर-रत्न को दिखाने वाला चक्षु है। 'सिद्धये' शब्द के आगे **'मां वेत्ति तत्वतः'** आने से पता लगता है कि यहाँ योग के उसी मार्ग का नाम सिद्धि कहा जाता है जिससे साधक ईश्वर के तत्व को भली प्रकार से जान लिया करता है। असत्य से दृष्टि को हटाकर सत्य पर जमा देना ही योग का सच्चा अर्थ है। अर्थात् सिद्धि और सत्य पर विचार दृष्टि को जमा देना ही भगवान को तत्व से जान लेना है। जो साधक इस अर्थ को समझ कर योग में लगता है वही योग के तत्व को प्राप्त किया करता है। अन्य सब मार्ग में ही पड़े रह जाते है। जैसे कुछ साधक थोड़े दिन साधना करके अपनी व्यग्रता और चंचलता के कारण साधना को ही छोड़ दिया करते है। तो दूसरे कुछ अपनी अनियमितता के कारण रोगी होकर जीवन बिताया करते है। कुछ हठी दुराग्रही रोगी हो जाने पर भी मनमाने साधन में लगे रहा करते है। ऐसे दुराग्रही साधकों की चिकित्सा मृत्यु मुख के सिवा कुछ भी नहीं होती। यदि कोई साधक इन सब कठिनाइयों से पार हो भी गया तो वह भौतिक सिद्धियों के फेर मे पड़ जाया करता है।

उपर्युक्त तीनों विघ्नों से सताये हुए असिद्ध साधकों का साधन-संचय दूसरे जन्मों में काम

आ जाया करता है। क्योंकि वे अपने विघ्नों के लिए पश्चाताप रूपी प्रायश्चित करते रहते हैं। परन्तु सिद्धियों का खोया हुआ साधक तो अपना सर्वस्व खोकर ही यहाँ से प्रस्थान किया करता है। जहाँ तीनों को अपने विघ्नों के लिए पश्चाताप हुआ करता है, वहाँ इसको अपनी सफल सिद्धियों पर प्रसन्नता बढ़ती रहा करती है। यह अपना सर्वस्व लुटाकर भी बधाई बांटने वाले के सदृश है।

उपर्युक्त सब विघ्न-बाधाओं एवं पापों से बचकर साधना करने वाले साधक का ही 'सिद्धये' शब्द से निर्देश किया गया है। वही सिद्ध साधक मेरे तत्वों का जाना करता है- यही भगवान के उपर्युक्त वाक्य का अभिप्राय है। इस भगवान के देखने, पकड़ने पाने वाली सिद्धि को वही साधक प्राप्त कर सकता है जो "संसार सत्य है" की भावनाओं को मिटाकर योग में लगा करते हैं। जो संसार को सत्य मानकर उसकी पुष्टी (भोगप्राप्ति) के लिए योग में लगा करते हैं, उन्हीं को उपर्युक्त व्यग्रता, अनियमितता दुराग्रह आदि दोष-विघ्न तथा सिद्धि आदि पाप सताया करते हैं। सच तो यह है कि भोगों के लिए योग में लगना रोग और मृत्यु को पाना और भोग वासना को भस्म करने के लिए योग में लगना भगवान को पा जाना है। यही योग साधना का मूल मन्त्र व सिद्धान्त बिन्दु है। जिस योग की महत्ता दिव्यता, गहनता तथा कठिनता को ऊपर लिखा गया है, उसके अनुसार चलकर साधक ईश्वर की ज्योति में भी समा सकता है और मृत्यु का कलेवा भी बन सकता है। उस योग को यदि सहज साध्य बनाना हो तो सर्व प्रथम ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिये। ब्रह्मचर्य के बिना योग की सफलता का अंकुर वैसे ही नहीं उठा करता जैसे जल के बिना बीज। ब्रह्मचर्य के बिना योग वैसा ही है जैसे प्रकाश के बिना सूर्य और प्राण के बिना प्राणी। ब्रह्मचर्य की निष्ठा के बिना योग को छूना अपनी मौत को बुलाना है। अतः योग के जिज्ञासु का ब्रह्मचारी होना उतना ही आवश्यक है जितना कि जीवन के इच्छुक को प्राणी (प्राण वाला) होना आवश्यक है। ब्रह्मचर्य व्रत से युक्त साधक के प्राण स्वभाव से ही स्थिर रहा करते हैं। यही बात योग शास्त्र में भी कही गयी है कि-**"स्थिरे बिन्दौस्थिरः प्राणः"** वीर्य के स्थिर हो जाने से ही प्राण भी स्थिर हो जाया करते हैं। इस सिद्धान्त के पोषक वाक्य योग शास्त्र में सैकड़ों ही मिलते हैं। जैसे-**सिद्धे बिन्दौ महादेवी किं न सिद्धयति भूतले।** हे पार्वती ! बिन्दु के सिद्ध हो जाने पर ऐसी कौन सी सिद्धि है जो साधक को प्राप्त न हो सके। पातञ्जलि योग दर्शन में भी कहा है कि-**ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां वीर्य लाभः।** ब्रह्मचर्य की प्रतिष्ठा से वीर्य (बिन्दु) की स्थिरता ऊर्ध्वगति का लाभ प्राप्त होता है-हठयोग प्रदीपिका में कहा है कि- **ऊर्ध्वरेता भवेधावत् तावत् काल भयं कुतः।** जब तक साधक बिन्दु को ऊर्ध्वगामी रखता है तब तक उसको काल-मृत्यु-प्राणक्षय का भय नहीं है। अथर्ववेद में भी कहा है कि- **ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत।** ब्रह्मचर्य रूप तप से देवों ने मृत्यु को मार डाला। शिव संहिता में महादेव जी कहते हैं कि- **मरणं बिन्दु पातेन जीवनं बिन्दु धारणात्** बिन्दु का पतन ही मृत्यु और बिन्दु का धारण या स्थिरता ही जीवन है। आगे फिर कहा है कि- **"अहं बिन्दुः शिवो बिन्दुः"।** मैं बिन्दु हूँ,

शिव ही बिन्दु है। आगे फिर पार्वती से कहते हैं कि हे पार्वती ! मैं बिन्दुजय से ही शिव पद को प्राप्त कर सका हूँ। इस बिन्दु के धारण से ही तो ॐ का ॐकार ईशत्व को प्राप्त हो गया है। उसके मत्थे पर से बिन्दु को हटाकर देखिये कि वह फिर भी ॐ रहता है या नहीं। वह बिन्दु हटते ही ईशत्व से च्युत हो जाता है। बिन्दु धारण ही उसको ईशत्व पद दिये हुए है।

जब योग के जन्मदाता मुख्याचार्य शिव को शिवत्व ही बिन्दु धारण से प्राप्त हुआ है। जब योग के प्रदाता ईश्वर के प्रथम नाम ॐ के ओमत्व का कारण भी बिन्दु धारण ही है तो फिर साधारण ब्रह्मचर्यहीन पुरुष योगसिद्ध शिवत्व को प्राप्त हो सकेगा, यह बात असम्भव से भी अत्यन्त दुस्तर है। दुस्तर ही नहीं अपितु अपनी मौत को निमन्त्रण देना है।

उपर्युक्त विवेचन से दो बातें सिद्ध होती हैं– एक, ब्रह्मचर्य बिना योग का साधन करना अपने को रोग और मौत के मुख में भेज देना है। दूसरा, मरने वाले मिथ्यात्व से छूटना शिवत्व को प्राप्त करना है। यही योग शब्द का सच्चा तत्वार्थ है। ॐ के मतानुसार इस अर्थ को लेकर योग साधन में लगने वाला साधक ही योग मार्ग की कठिनाइयों से पार पहुँचा करता है। ब्रह्मचर्य से हीन साधन योग मार्ग में सफलता नहीं पा सकता है। ब्रह्मचर्य ही योग-सफलता की कुंजी है। यही नहीं, अपितु ब्रह्मचर्य ही विश्वमात्र की सफलताओं का बीज है। फिर यह सफलता चाहे भौतिक हो या आध्यात्मिक। यही कारण है कि हमारे पूर्वजों ने मनुष्य-निर्माण की अवस्था का नाम ही ब्रह्मचर्य रखा है। इस अवस्था को पूर्ण रूप से निभाने वाला पुरुष सफलता का भण्डार ही हुआ करता है। इस तत्व का पता हमको ब्रह्मचर्य शब्द का अर्थ समझने से ही लग जाता है।

ब्रह्मचर्य का शब्दार्थ समझना बहुत कठिन है। बहुत से लोग ब्रह्मचर्य का अर्थ आजन्म क्वांरा रहना या जटा-जूट आदि वेष बनाकर फिरना मात्र ही मान लेते हैं। सचमुच ब्रह्मचर्य का इतना अर्थ लेना ब्रह्मचर्य की हत्या करना है। ब्रह्मचर्य का सम्बन्ध न तो कुंवारेपन से है, और न किसी वेष भूषा से ही। स्थूलार्थ में ब्रह्मचर्य का अर्थ वीर्य निरोध या काम दमन से ही है। परन्तु इतना समझने से भी ब्रह्मचर्य का अर्थ पूरा नहीं होता है। ब्रह्मचर्य का पूरा अर्थ होता है वीर्य को रोकना, वेद ज्ञान को पाना, सत-चित-आनन्द में समाहित होना। वीर्य एक दिव्य तेज का नाम है। जैसे कि शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है–**"वीर्यं वै भर्गः"**।। वीर्य ही तेज, आभा, प्रकाश है। इस वीर्य रूप ब्रह्म के दीपन से ही ब्रह्म-वेद के तत्व ज्ञान का दर्शन और वेद तत्व के ब्रह्म दीपक से सत-चित-आनन्द का साक्षात्कार हुआ करता है। यह ब्रह्मत्रय संगम ही ब्रह्मचर्य का पूरा तत्वार्थ है। इस ब्रह्म-त्रिवेणी का स्नाता पुरुष ही योग का सच्चा अधिकारी हुआ करता है।

हमारे शास्त्रों में वीर्य को बीजत्व, वीरत्व, ओजस्, बल, तेज, शुक्र, पवित्रता, रेत, रेतस, कान्ति, बिन्दु, भर्गादि नाम से कहा गया है, और वीर्य को ही सृष्टि का उत्पादक, पालक और संहारक भी कहा है। परन्तु योग शास्त्र में वीर्य को ब्रह्म बिन्दु–ब्रह्मबीज तक कहा गया है। भगवान महादेव ने योग शास्त्र में कहा है कि–

"अहं बिन्दु रजः शक्तिः"।।

मै (महादेव) बिन्दु वीर्य हूँ और रज शक्ति (पार्वती) है। योग शास्त्र मे कहा है कि साधक के नाभि स्थान मे रज और मस्तक के मध्य केन्द्र मे वीर्य बिन्दु रहा करता है। रज का सिन्दूर वर्ण और वीर्य का श्वेत वर्ण है। रज रूप पार्वती को नाभि से उठाकर मस्तक मे मिला देना ही योग सिद्धि का सफल रहस्य है। इस कथन मे बहुत बारीक वैज्ञानिक तत्व छिपा हुआ है। ब्रह्मचर्य का ब्रह्म शब्द भी वीर्य और ब्रह्म के अभेद्य सम्बन्ध को बता रहा है। इस अभेद्य सम्बन्ध ा को अभेद्य रखने वाला साधक ही प्रथम श्रेणी का ब्रह्मचारी होता है। इस ब्रह्मचारी का अहं बिन्दु अपने स्वभाव सिद्ध स्वरूप ब्रह्म मे ही स्थिर रहा करता है। अर्थात् ऐसे ब्रह्मचारियों को यह भी मालुम नही होता कि हमारे वीर्य तन्तुओं मे संसार से सम्बन्ध रखने वाला कोई वीर्य रूप पदार्थ है या नही। उसका ब्रह्म बिन्दु सब तरह के कम्पनो से रहित सदा स्थिर रहा करता है।

दूसरी श्रेणी के ब्रह्मचर्य वाले साधक के ब्रह्म-बिन्दु मे कम्पन तो अवश्य उठा करता है, परन्तु वह अपने कठोर संयम, बल और भीष्म प्रतिज्ञा द्वारा ब्रह्मबिन्दु के उन कम्पनो को ब्रह्मबिन्दु की ओर ही ढकेल दिया करता है। यह भूमिका साधक के लिए बहुत ही कठिन कसौटी की है।

तीसरी श्रेणी के ब्रह्मचर्य वाले ब्रह्मचारी (साधक) के ब्रह्मबिन्दु मे जो सृजन कम्पन होता है, उन्हें वह ईश्वर का सृष्टि-सृजन-आदेश समझकर सन्तान उत्पत्ति मे बदल दिया करता है। वह इस सृजन के ध्येय से ही गृहकार्य मे प्रवृत्त हुआ करता है। वह ब्रह्म की उस ब्रह्मबिन्दु मे होने वाली **"एकोऽहं बहु स्याम्"** की सांकेतिक सूक्ष्मान्तर दिव्य वाणी को सुना करता है। जो उसको कहती है कि चल, तू भी मेरे बहुत होने के कार्य मे सम्मिलित होजा। ईश्वरीय आज्ञा का पालक और विषयासक्ति से रहित होने से यह साधक भी ब्रह्मचारी ही होता है। ऐसे साधकों के सृजन कार्य मे ईश्वरीय सृजन-प्रेरणा ही कार्य करती है।

प्राकृतिक धक्के के सिवा साधक का उससे कुछ भी नहीं बनता-बिगड़ता। इस प्राकृतिक धक्के को पशु-पक्षी आदि अभी तक खूब अच्छी तरह से समझते है। वे बारहो मास स्त्री-पुरुष की भावना से रहित होकर विचरा करते है। जब उनको यह ईश्वरीय प्राकृतिक संकेत मिलता है, तभी वे स्त्री-पुरुष मे बदल जाया करते है। इस प्राकृतिक संकेत का वैज्ञानिक बोध ही पशु-पक्षी आदि मे बन्ध्यात्व के अभाव का कारण है।

इसी तरह जो साधक इस ईश्वरीय संकेत को पाकर अनासक्त भाव और निष्काम बुद्धि से सावधान हुए शास्त्रानुकूल सृजन कार्य किया करते है, वे ब्रह्मचारी ही नही अपितु ईश्वर के आज्ञापालक ही हुआ करते है। ऐसे साधकों के काम को ही तो भगवान् गीता मे अपना स्वरूप बताते है। जैसे कि-**"प्रजनश्चास्मि कन्दर्पः"**।

"धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ।"

(सृजन धर्म के अनुसार सन्तान बनाने वाला काम मै ही हूँ)। उपर्युक्त तीनों ब्रह्मचारी ब्रह्म

के उपासक हैं। प्रथम ब्रह्मलीन, ब्रह्मस्थित ब्रह्म स्वरूप कहा जाता है। दूसरा योगी होता है। और तीसरा भगवान का परम प्रिय भक्त कहा जाता है। ईश्वर की प्रेरणा से, प्रातः स्मरणीय परम पूज्य श्री सद्गुरुदेव योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज की कृपा से भारत में ऐसे ब्रह्मचारियों का जन्म हो जिससे कि योग को पुनर्जीव् प्राप्त हो सके। मुझे श्री सद्गुरुदेव भगवान के मुखारबिन्द से निकला एक वाक्य कहीं पढ़ने को मिला कि "लल्ला एक सच्चा योगी सम्पूर्ण जगत के मार्ग को प्रशस्त करने में पूर्णतया सफल हो सकता है जब योगी के ऊपर 'सत्-चित्-आनन्द' स्वरूप श्री सद्गुरु देव श्री महाप्रभु जी जैसे महायोगिराज का आर्शीवाद हो।"

अतएव इस जगत में केवल पूर्ण ब्रह्मचर्य एवं श्री सद्गुरुदेव जी के शुभाशीर्वाद एवं पूर्ण योग की आवश्यकता है। जिससे भारत सहित सम्पूर्ण जगत प्रभुमय हो। योगमय हो। कल्याणमय हो। शान्तिमय हो। सुखमय हो।

***

परमात्मा की उपलब्धि

तिलेषु तैलं दूधनीव सर्पि–
राप: स्रोत: स्वरणीषु चाग्निः
एवमात्माऽऽत्मनि गृह्यतेऽसौ
सत्यनैनं तपसा योऽनुपश्यति।

अर्थ–तिल में तेल, दही में घी, स्रोतों में जल और अरणियों में अग्नि जिस प्रकार छिपे रहते हैं, उसी प्रकार वह परमात्मा अपने हृदय में छिपा हुआ है। जो कोई साधक उसको सत्य के द्वारा संयम के द्वारा, तप के द्वारा देखता रहता है यानि चिन्तन करता रहता है उसे वह परमात्मा अवश्य ग्राह्य हो जाता है। अर्थात् ऐसे संयमी योगी साधक को परमात्मा अवश्य प्रत्यक्ष हो जाते हैं।

श्रीभगवद् गीता में भगवान की प्रतिज्ञायें

लेखक–ब्रह्मचारी ओमप्रकाश

गीतोपदेश के समय दुःख तापित मनुष्यों के लिए कई स्थलों पर भक्तों के उद्धार के लिए अनेक प्रकार की प्रतिज्ञायें की गई हैं। साथ ही साथ पाप ताप से निराश व्यक्तियों के लिए आशा की वाणी भगवान के मुखारविन्द से निकली है। केवल भक्तों के लिए ही नहीं अपितु शरणागत, अतिपापी, दुराचारी तथा नीच माने जाने वाले अन्त्यज, स्त्री, शूद्र आदि के लिए भी भगवान ने अनेकों प्रतिज्ञायें की एवं आशा की वाणी सुनाई। जिनसे भगवान श्री कृष्ण की कृपालुता का हमें परिचय मिलता है। यहाँ भक्त का तात्पर्य भगवद् आश्रित कर्मी ज्ञानी, भक्त एवं योगी सबके लिए है।

योगेश्वर श्री कृष्ण की प्रतिज्ञाएँ इस प्रकार हैं–

(१) प्रथम प्रतिज्ञा:–

स एवायं मया तेऽद्य योग: प्रोक्त: पुरातन:।
भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम्।। (४-३)

अर्थात्–तू मेरा भक्त और प्रिय सखा है इसलिए वही यह पुरातन योग आज मैंने तुमसे कहा है; क्योंकि यह बड़ा ही उत्तम रहस्य है अर्थात् गुप्त रखने योग्य विषय है।

(२) दूसरी प्रतिज्ञा:–

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वत:।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन।। (४/९)

अर्थात्–हे अर्जुन ! मेरे जन्म और कर्म दिव्य और अलौकिक हैं इस प्रकार जो मनुष्य तत्त्व से जान लेता है वह शरीर को त्यागकर फिर जन्म को प्राप्त नहीं होता; किंतु मुझे ही प्राप्त होता है।

(३) तीसरी प्रतिज्ञा:–

मय्यासक्तमना: पार्थ योगं युञ्जन्मदाश्रय:।
असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु।। (७-१)

अर्थात:–हे पार्थ! अनन्य प्रेम से मुझमें आसक्त चित्त तथा अनन्य भाव से मेरे परायण होकर योग में लगा हुआ तू जिस प्रकार मुझको पूर्णतया संशय रहित जानेगा उसको सुन।

(४) चौथी प्रतिज्ञा:–

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पित मनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्य संशयम्।। (८-७)

अर्थात्–इसलिए हे अर्जुन ! तू सब समय में निरन्तर मेरा स्मरण कर और अन्त:करण की शुद्धि के लिए युद्ध भी कर। इस प्रकार मुझमें अर्पण किए हुए मन-बुद्धि से युक्त होकर तू नि:संदेह ही प्राप्त होगा।

(५) पाँचवीं प्रतिज्ञा:-

इदंतु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे।

ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात।। (९-१)

अर्थात्-श्री भगवान बोले! तुझ दोष दृष्टि रहित भक्त के लिए इस परम गोपनीय विज्ञान सहित ज्ञान को पुनः भलीभांति कहूँगा। जिसको जानकर तू दुःख-रूप संसार से मुक्त हो जायेगा।

(६) छठवीं प्रतिज्ञा:-

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।

तेषां नित्याभियुक्तानां योगंक्षेमं वहाम्यहम्।। (९-२२)

अर्थात्-जो अनन्य प्रेमी भक्तजन मुझ परमेश्वर को अभेद दृष्टि से भजते है, उन नित्य निरन्तर मेरा चिन्तन करने वाले पुरुषों का योग क्षेम मैं स्वयं निर्वाह कर देता हूँ।

(७) सातवीं प्रतिज्ञा:-

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।

तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः।।(९-२६)

अर्थात्-जो कोई भक्त मेरे लिए प्रेम से पत्र, पुष्प, फल, जल आदि अर्पण करता है, उस शुद्ध बुद्धि निष्काम प्रेमी भक्त का प्रेम पूर्वक अर्पण किया हुआ वह पत्र-पुष्पादि मैं सगुण रूप से स्वीकार कर लेता हूँ।

(८) आठवीं प्रतिज्ञा

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।

कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति।। (९-३१)

अर्थात्-वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और सदा रहने वाली परम शान्ति को प्राप्त होता है। हे अर्जुन ! तू निश्चयपूर्वक सत्य जान कि मेरा भक्त नष्ट नहीं होता।

(९) नवी प्रतिज्ञा-

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।

स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्।। (९-३२)

अर्थात्-हे अर्जुन ! स्त्री, वैश्य, शूद्र तथा पाप योनि चाण्डालादि जो कोई भी हो, वे भी मेरे शरण होकर परम गति को ही प्राप्त होते हैं।

(१०) दशावीं प्रतिज्ञा-

भूय एव महाबाहो श्रृणु मे परमं वचः।

यत्तेऽहं प्रीयमाणाय वक्ष्यामि हितकाम्यया।।(१०-१)

अर्थात्- श्री भगवान बोले! हे महाबाहो! फिर भी मेरे परम रहस्य और प्रभाव युक्त वचन को सुन जिसे मैं तुझ अतिशय प्रेम रखने वाले के हित की इच्छा से कहूँगा।

(११) ग्यारहवीं प्रतिज्ञा--

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते।। (१०-१०)

अर्थात्-उन निरन्तर मेरे ध्यान आदि में लगे हुए और प्रेम पूर्वक भजन करने वाले भक्तों को मैं वह तत्वज्ञान रूप बुद्धि योग देता हूँ जिससे वे मुझको ही प्राप्त होते हैं।

(१२) बारहवीं प्रतिज्ञा--

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्।
भवामि नचिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम।।(१२-७)

अर्थात्-हे अर्जुन ! उन मुझ में चित्त लगाने वाले प्रेमी भक्तों का मैं शीघ्र ही मृत्यु रूप संसार समुद्र से उद्धार करने वाला होता हूँ।

(१३) तेरहवीं प्रतिज्ञा:--

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः।।(१२-८)

अर्थात्-मुझमें मन को लगा और मुझमें ही बुद्धि को लगा, देह त्याग के पश्चात तू मुझमें ही निवास करेगा, इसमें कुछ भी संशय नही है।

(१४) चौदहवी प्रतिज्ञा-

अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वान्येभ्य उपासते।
तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः।। (१३-२५)

अर्थात्-परन्तु इनसे दूसरे अर्थात् जो मन्द बुद्धि वाले पुरुष है वे इस प्रकार न जानते हुए दूसरों से अर्थात् तत्वके जानने वाले पुरुषों से सुनकर ही तदनुसार उपासना करते है और वे श्रवण परायण पुरुष भी मृत्यु रूप संसार सागर से निःसन्देह तर जाते है।

(१५) पन्द्रहवी प्रतिज्ञा

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्।। (१८-६२)

अर्थात्-हे भारत! तू सब प्रकार से उस परमेश्वर की ही शरण में जा। उन परमात्मा की कृपा से ही तू परम शान्ति को तथा सनातन परम धाम को प्राप्त होगा।

(१६) सोलहवीं प्रतिज्ञा:--

सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः।
इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम्।। (१८-६४)

अर्थात्-सम्पूर्ण गोपनीयों से अति गोपनीय मेरे परम रहस्य युक्त वचन को तू फिर भी सुन तू मेरा अतिशय प्रिय है, इससे यह परम हितकारक वचन मैं तुझसे कहूँगा।

(१७) सत्तरहवी प्रतिज्ञाः-

- मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे।। (१८-६५)

अर्थात्-हे अर्जुन, तू मुझमें मन वाला हो मेरा भक्त बन, मेरा पूजन करने वाला हो और मुझको प्रणाम कर। ऐसा करने से तू मुझे ही प्राप्त होगा। यह मै तुझसे सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ क्योंकि तू मेरा अत्यन्त प्रिय है।

(१८) अठारहवीं प्रतिज्ञा-

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।। (१८-६६)

अर्थात्-सम्पूर्ण धर्मों के अर्थात् सम्पूर्ण कर्तव्य कर्मों को मुझमें त्याग कर तू केवल एक मुझ सर्वशक्तिमान, सर्वाधार परमेश्वर की ही शरण में आ जा। मै तुझे सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर दूंगा, तू शोक मत कर।

***

शोक-समाचार

कानपुर के अपने गुरुभाई श्री आर.सी.ठाकुर को पुत्रशोक का समाचार पाठकों को देते हुए हमें अत्यधिक दुःख हो रहा है। गत २६ नवम्बर १६६६ को काल के क्रूर हाथों ने श्री ठाकुर के कन्ष्ठि पुत्र प्रेमचन्द को अल्पायु में ही हमसे छीन लिया। श्री गुरूदेव जी उसकी आत्मा को अपनी अभय गोद प्रदान करने की कृपा करें-ऐसी हमारी विनती है। 'सिद्धयोग' दिवंगत आत्मा को शांति एवं शोक संतप्त परिवार को इस असामयिक आघात से उबरने की शक्ति प्रदान करने की ईश्वर से प्रार्थना करता है।

-संपादक

साधना–पथ–पाथेय

—डा. विजय सिंह, गोरखपुर

भवाटवी से कैसे पार पाया जाय, इस हेतु योग-साधना की अपरिहार्यता सभी सिद्ध एवं संतों ने एक मात्र उपाय बताया है। सद्गुरु से शक्तिपात प्राप्त जीव कैसे अपने परमस्वतंत्र परमेश्वर स्वरूप को प्राप्त होगा ? साधना में मंत्र का क्या योगदान है ? अर्न्तजगत बोध होने पर चिदाकाश में घटित होने वाली मनोमय, विज्ञानमय लोकों के बोध का रहस्य क्या है ? आदि-आदि प्रश्न साधक को जानने की इच्छा होती है। एक लोकोक्ति है- **"देवे परिचयो नास्ति देव पूजा कथं भवेत्"** ? साधक समुदाय में बाहुल्यता से यह समस्या रहती है कि जब तक इष्ट देवता का दर्शन न हो तब तक ठीक-ठीक ध्यान कैसे हो सकता है। इसका समाधान है-गुरुप्रदत्त वीर्य सम्पन्न मंत्र का यथाविधि श्वास-प्रश्वास जाप। जैसे काठ में निहित अग्नि को यथाविधि अभिव्यक्त करने के लिये कौशल पूर्वक घर्षण की जरूरत होती है। उसी प्रकार मंत्र में निहित ईष्टत्व, सद्गुरु तत्व एवं उस मंत्र के समस्त ऋषियों का दर्शन जप की निरन्तरता अगाधता से ही प्राप्त होता है। अतः हम सभी को सद्गुरु प्रदत्त मंत्र का अनुष्ठानिक जाप करने से ही यथार्थ ध्यान संभव है। अन्यथा मंत्र के पूर्ण प्रज्वलन के बिना ध्यान कल्पित होगा। यह भी कम नही है परन्तु यथार्थता की ओर बढ़ने के लिये ध्यानी को परिपुष्ट मात्रा में मंत्र जप करते रहना चाहिये। ध्यान लगने पर जब आनन्द, उत्सुकता, क्रिया आदि होने लगता है उस समय जो साधक मंत्र जाप छोड़ देते है वे आगे चलकर अन्तराय से घिर उठते है। क्योंकि सिद्ध सद्गुरु मंत्र में इष्टदेवरूपा शक्ति अव्यक्त रूप में विद्यमान् है। उसे प्रत्यक्ष करने के लिये मंत्र के साथ चित्त का संघर्षमय संयोजन होना अति आवश्यक है। जिसके परिणामतः इष्ट भावना करने से देवता का रूप घटाकाश के मूलाधार में पहले अस्थाई रूप में अभिव्यक्त होने लगता है उसके बाद क्रिया के प्रभाव में शनैः शनैः स्थायित्व प्राप्त होता है। इसे ही यथार्थ ध्यान कहते है। धारणा रूप में शास्त्र कल्पित रूप का तब तक ध्यान करते रहना है जब तक मंत्र के तेज में ईष्ट अपने को प्रकट न करे दे।

एक अनुभवी संत की कुछ बातें यहाँ विचारणीय है-

मनुष्य की स्वाभाविक श्वास की संख्या २१६०० मानी जाती है। प्रतिश्वास-प्रश्वास का मंत्र सम्बन्ध ही अजपा का गूढ़ार्थ है। एक साथ इतना जाप न कर सकने पर भिन्न-भिन्न खंडशः जप २१६०० होनी चाहिये। प्रतिदिन १ मनुष्य को अपने सामर्थ्य के अनुसार अपने आय का कुछ अंश निष्काम भाव से दान के लिये निकालना चाहिए। इससे अपरिग्रह भाव दृढ़ होता है। गाढ़े ध्यानी को भी इसका अभ्यास करना चाहिये। अन्यथा लौकिक धनैषणा पुनः पशुत्व की ओर ढकेल देता है।

ईष्ट मूर्ति-दर्शन, सद्‌गुरु स्वरूप दर्शन ज्योतिर्मय होने पर साधक का आत्मसमर्पण स्वयं हो जाता है। "मै प्रभु के ऊपर निर्भर हूँ" इस भाव का उदय और आगे प्रगाढ़ ध्यान के कारण "प्रभु ने मुझको ग्रहण कर लिया है" यह भाव बना रहता है। जो कुछ शरीर कर रहा है सब कर्म उन्ही का है। ऐसा ध्यानी को भाव होता है। जो मात्र बातो के बरात लगाने वाले है वे इन भावों के अल्पांश को भी अन्दर से अनुभव नही करते है। क्योंकि साधक को सर्वप्रथम श्री गुरु प्रीति या उनकी प्रसन्नता-लाभ करना ही उद्‌देश्य होना चाहिए। जीव का प्रभु विस्मरण ही प्रधान रोग है। जिसके चलते जगत में संस्कारजनित कष्ट और दुर्दशा सहना पड़ता है। अतः जप, ध्यान, अनुष्ठान आदि के द्वारा आनन्दानुभव प्राप्त होने पर तथा अनन्य भाव से उन आनन्दकंन्द परमशिव, परमनारायण श्री प्रभु के चरणारविन्दों का चिन्तन करने से वो कृपाधन संस्कार जनित महाकष्टों से छुटकारा अवश्य-अवश्य ही देते है। एक बात हमें हर मनः स्थित में अभ्यासपूर्वक याद रखना चाहिए कि हमारा अनुभूति लाभ करना मात्र लक्ष्य नही है, अपितु श्री गुरुचरणों मे आत्मनिवेदन। अतः हमें साधना तब तक निरन्तर करते रहना चाहिए जब तक हम गुरु-अनुगत न हो जायें। इसके होने पर सद्‌गुरु ही सब कुछ कर देते हैं।

साधक गुरु कृपा से ही पूर्ण साक्षात्कार का अधिकारी बनता है। तब उसका लक्ष्य गुरु की आज्ञा का पालन करना ही रहता है। **"आज्ञा गुरुणाम् विचारणीया"** जीवन का मूल मंत्र होता है। अपने परम सद्‌गुरु भगवान का दिव्य-जीवन-चरित्र इसका सर्वोत्तम उदाहरण है।

सद्‌गुरु के बताये साधना विधि को हमें निष्ठापूर्वक जीवन पर्यन्त करते रहना चाहिए। अनुभूतियाँ होती है या नहीं। ध्यान लगता हो अथवा नहीं। परन्तु नियमानुवर्तिता से मंत्र का जप आगे सब रहस्य अकस्मात उजागर कर देगा।

यहाँ एक वृतान्त का अवलोकर करें। श्री योगिराज श्यामाचरण लाहड़ी महाशय के एक शिष्य पालधी महाशय हो चुके है। एक दिन इनके पास इनका एक शिष्य आया। उसने निवेदन किया-महाराज, साधन मे कोई उन्नति नहीं हो रही है। कुछ अनुभव भी नही होता है। अब तो निराशा ने यहाँ तक घेर लिया है कि मन साधन को भी छोड़ देना चाहता है। पालधी महाशय ने उससे क्या कहा वह अत्यन्त विचारणीय है। उन्होंने उस शिष्य से कहा-बेटा! घबड़ाओ नहीं। निष्ठा से गुरु-आज्ञा पालन करते रहो। फल अवश्य मिलेगा। (श्री गुरुदेव भगवान का भी कथन है-"मनुष्य चाकरी देत है क्यों राखें भगवान") देखो ! मै भी गुरु से साधन लेकर ग्यारह वर्ष तक उनके (श्री लाहड़ी महाशय) के सानिध्य में साधन करता रहा। साधन-लब्ध अनुभूति कुछ भी नही थी। कुछ दिनों बाद गुरुदेव का तिरोधान हुआ। मै अत्यन्त घबड़ाया सोचने लगा अब मेरा आध्यात्मिक उत्थान असंभव है। जब उन समर्थ गुरु के रहते कुछ नही हुआ तो अब क्या होगा ? कभी-कभी मन में विषाद्-अवसाद घिर आता। परन्तु अन्दर से विवेक कहता, साधन

मत छोड़ो। मै पूर्ववत् साधन करता रहा। इस प्रकार श्री गुरु के तिरोधान के तेरह वर्ष बाद तक मै नियमित रूप से साधन करता रहा। एक दिन उन कृपाधन की दृष्टि पड़ी और मै निहाल हो गया। एक दिन प्रातःकाल नित्यक्रिया के लिए बाथरूप मे गया। अकस्मात एक तीव्र अनुभूति वही जाग्रत हुई और स्नानागार में ही मै समाधिस्थ हो गया। एक विराट अखण्ड तेजोमय प्रकाश का अनुभव होने लगा मेरा देहात्मबोध, वाह्य जागतिक ज्ञान लोप हो गया। उस तेज मे सद्गुरु की चिन्मय मूर्ति का दर्शन हुआ। आशीर्वाद प्राप्त हुआ। उस समय जो प्रकाश हुआ उस पर आजतक किसी मनोदशा मे आवरण नही पड़ा। उस दिन घण्टो उसी समाधि मे स्नानागार में पड़ा रहा। समाधि से जाग्रत होने के बाद से शोक दुखादि हमेशा के लिए गायब हो गये। अतः वह परम गुरु सदैव जानते है। साधक को किसी भी स्थिति में निराश होकर साधना नही छोड़नी चाहिए।

पालधी महाशय के उपदेश का सारांश इस प्रकार है–

चित्तरूपी ब्रह्म आभास चैतन्य है। चित के माया (त्रिगुण) सानिध्य से ही विपरीत ज्ञान होता है। उसे ही जीव अवस्था कहते हैं। जीव जब गर्भ मे आता है उस समय से ही उसके सुषुम्ना में सोऽहं भाव विलोम से चन्द्र मण्डल से मणि पूरक (सूर्य मण्डल) तक प्राण द्वारा गतिशील रहता है। जीव भी उसी के साथ पिण्डाकाश मे विचरण करता है। परन्तु प्रसवावस्था मे जीव का विषयों के साथ संलग्नता प्राप्त हो जाता है। सुषुम्नाशक्ति बन्द हो जाती है। इड़ा-पिंगला-मार्ग से प्राण गति संचारित होने लगता है। इसका स्वरूप है रज और तम रूपी आवरण शक्ति। हंस और सोऽहं शब्द के साथ मूलाधार से आज्ञा चक्र के निम्न तल तक का नाम है संचार। शून्य से बना हंस नादात्मक सर्पाकार कुण्डलिनी शक्ति है। यही प्राण शक्ति है। सामान्य जीव मे स्थूल स्पन्दन इसका आज्ञाचक्र से मणिपुर तक बना रहता है। अपान वायु रूप सोऽहं मूलाधार से मणिपुर तक स्पन्दित रहता है। इड़ा-पिंगला की गति एवं सुषुम्ना की निष्क्रियता ही घोर संसारी दशा है, जीव का। जब सद्गुरु कृपा से जाग्रत कुण्डलिनी सुषुम्ना द्वार खोलकर अग्रसरित होने लगती है तब मूलाधार से आज्ञा चक्रतक विद्या रूपी माया का विकास होता है। तब अपान रूप सोऽहं द्वारा आकृष्ट होकर हंसः की ऊर्ध्व गति होती है। अब इस अवस्था में जीव को अपने स्वातन्त्र का आभास होने लगता है। अतः निष्ठापूर्वक मंत्रानुसंधान करते रहने पर आज्ञा चक्र भेदकर कुण्डलिनी संहस्रार की ओर गति पाकर जीव को ब्रह्म की अभेदावस्था का बोध कराती है। यह रहस्य साधना व्यापार द्वारा ही उद्घाटित है अथवा परम सद्गुरु की अहैतुक कृपा से सुलभ प्राप्त हो जाता है।

***

श्रीमती बसन्ती की शरणागति

—केशवदेव उपाध्याय, वाराणसी

आदरणीय श्री चण्डीप्रसाद जी ग्राम चाँदपुर के निवासी थे। यह ग्राम मुरादाबाद एवं धामपुर नगीना के करीब ही स्थित है। इनकी बहन बसन्ती देवी श्री महाप्रभुजी की कृपा पात्र थी इनकी शादी के बाद इनका जीवन काफी सुखमय रहा। इनको एक पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई जिसका नाम रामकुमार रखा गया।

समय का चक्र चलता रहा,
समय करवट बदलता रहा।

उपरोक्त पंक्तियों को चरितार्थ करते हुये, समय ने करवट बदली एवं इनके पूज्य पतिदेव का प्राणान्त हो गया। उसके पश्चात् कुछ समय व्यतीत होने पर इन्हें क्षय रोग हो गया एवं इनके दोनों फेफड़े खराब हो गये हैं यह रिपोर्ट डाक्टरों ने परीक्षण के बाद बतलाया। यह बसन्ती देवी इस रोग के कारण महान कष्ट भोगने लगी। इस महान कष्टदायक रोग को भोगते-भोगते यह रोग की विभीषिका के फलस्वरूप जीवन से निराश एवं उदास सी रहने लगी। इनके परिवार में भगवान शंकर की पूजा की परम्परा पूर्व से ही थी। एवं भोलेनाथ ही इनके कुलदेवता थे। ये भी स्वभावत: भगवान भोलेनाथ की पूजा अर्चना किया करती थी। परन्तु चिकित्सकों द्वारा अपने को लाइलाज घोषित किये जाने के बाद तो इन्होंने मन में यह दृढ़ निश्चय कर लिया कि जब शरीर छूटना ही है तो अपना शेष जीवन भगवान की पूजा पाठ में ही लगाया जाय। अत: बसन्ती देवी ने अपने नैतिक कार्यक्रमों के बाद का बचा पूरे दिन का समय अपने आराध्यदेव भगवान भोलेनाथ के आरती पूजन भजन में लगाना आरम्भ कर दिया। फलस्वरूप महान पुण्य का उदय हुआ एवं इनके किसी परिचित ने इन्हें योग योगेश्वर अनादि सिद्धेश्वर एवं हम लोगों के दादा गुरूदेव श्री रामलाल जी महाराज का योग साधन आश्रम ऋषिकेश का पूरा पता एवं करूणा कृपा की कई यथार्थ घटनाओं का उदाहरण देकर यह अच्छी प्रकार समझा दिया कि यदि उनकी कृपा हो जावेगी तो अवश्य लाभ होगा। एवं जीवन बच जायेगा। श्रीमती बसन्ती देवी के अपने कुटुम्बी जनों ने इन्हें श्री महाप्रभु जी के चरणों में पहुँचाने का निश्चय किया एवं दूसरे दिन वे बसन्ती देवी को श्री योगसाधन आश्रम ऋषिकेश पहुँचा कर वापस आ गये। उस समय योग योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज आश्रम पर उपस्थित नही थे। कुछ समय पश्चात जब वे आश्रम पहुँचे तो श्री बसन्ती देवी ने स्वयं अपना दारूण दुखड़ा उनके चरणों में निवेदित किया। श्री प्रभु जी ने लोकाचार वश कहा कि तुम्हारा शरीर वृद्ध हो गया है, कोई आसन कर नही सकती, जीवन शक्ति का अभाव हो गया है, मै कर ही क्या सकता हूँ ? इस समय एवं ऐसी स्थिति मे डाक्टरी उपचार ही ठीक रहेगा। महान आशा एवं श्रद्धा से भरी श्रीमती बसन्ती देवी ने जब महाप्रभु जी

के मुखारबिन्दु से यह वचन सुने तो वह फूट-फूट कर रोने लगी। श्री महाप्रभु जी के सामने उसने रोते हुए प्रार्थना किया कि भगवन! डाक्टरों ने तो हमें पहले ही लाइलाज घोषित कर दिया था, आपको भी यदि यही आज्ञा है तो मैं अब यहाँ से कहीं नहीं जाऊँगी। यहीं आश्रम के सामने बैठकर आप का दर्शन किया करूंगी एवं जितना बन सकेगा भगवान का नाम जप लिया करूंगी। यदि आप की यही इच्छा है कि मैं इस रोग सहित मर जाऊँ तो यही होगा परन्तु मैं आप के इन चरणों को छोड़कर अन्यत्र नही जाऊँगी। इसके बाद उसने 'रक्षा करो'। ''प्रभु मेरी रक्षा करो।'' दो बार कहा एवं फिर दारूण कष्ट के कारण जोर-जोर से विलाप करना आरम्भ कर दिया।

''आ गयी लहर शिवा के मन में''

उपरोक्त पंक्तियों को चरितार्थ करते हुए दयासागर को दया आ ही गयी। करूणासागर महाप्रभु जी ने उसे किसी प्रकार शान्त कराया एवं आदेश दिया कि तुम इस योग साधन आश्रम में निवास करो, यहीं का भोजन किया करो, अन्यत्र कहीं का कुछ मत खाना एवं आश्रम की सेवा किया करो। यदि तुम ऐसा करोगी तो श्री प्रभु ! (सदाशिव, श्री महाप्रभु जी ने अपने गुरूदेव के लिए प्रभु शब्द का प्रयोग किया) की कृपा होगी एवं तुम स्वस्थ हो जाओगी। श्री बसन्ती देवी ने श्री महाप्रभु जी की आज्ञाओं का अक्षरशः पालन करना आरम्भ कर दिया, उसी दिन से जिस दिन उन्होंने उसे यह आदेश दिया था। श्रीमती बसन्ती देवी प्रातः काल उठती, उसके पश्चात शौचादि से निवृत्त होकर झाडू उठाती एवं पूजा गृह से आरम्भ करके बारी-बारी से पूरे आश्रम की सफाई करतीं। इस सफाई कार्य में करीब दो घण्टे का समय लग जाता। इसके बाद वे हाथ पैर धोती, दांतुन एवं सबके भोजन के पश्चात् भोजन करती एवं थोड़ा विश्राम करती। विश्राम के बाद अपराह्न में वो रसोई का बर्तन साफ करती एवं फिर झाडू लेकर पुनः पूरे आश्रम की सफाई करतीं। यही उनके जीवन यापन का क्रम बन गया एवं इसी कार्यक्रम में वह पूर्ण निरोग भी हो गयी। एक दिन श्री महाप्रभु जी ने उसे नेति करने, नाक से दूध पीने एवं 'जीवन तत्व साधन' करने का आदेश दे दिया। श्री बसन्ती देवी ने उनकी इन आज्ञाओं का भी पालन करना आरम्भ कर दिया। अपराह्न तीन बजे से महाप्रभु जी के दर्शनार्थ एवं रोग निवारणार्थ आने वाले श्रद्धालुओं का क्रम लगातार बना रहता था। यद्यपि श्रीमती बसन्ती देवी एक प्रतिष्ठित परिवार की महिला थी, फिर भी वे आश्रम की छोटी से छोटी सेवा बड़ी लगन एवं मेहनत से करती थीं। यहाँ तक कि अपराह्न में आने वाले सत्संगियों के जूते, चप्पल जो येन केन प्रकारेण रख दिये जाते थे, वे सभी जूते चप्पलों को रूमाल से साफ करके क्रमानुसार अच्छी प्रकार सजा कर रखा करती थीं। इनकी ऐसी श्रद्धा युक्त सेवा ने इनका भाग्य खोल दिया। एक दिन एक गरीब आदमी जिसके कपड़े भी गन्दे थे, जब अपना जूता निकालकर श्री महाप्रभु जी को, जो आरामकुर्सी पर विराजमान थे प्रणाम किया तो आशीर्वाद देने के बाद महाप्रभु जी ने देखा कि श्रीमती बसन्ती देवी बड़ी लगन से उसके फटे

जूते साफ कर रही थी, उसे अच्छी प्रकार रखने के लिए। ज्योंही श्रीमती बसन्ती देवी ने उसके जूते अच्छी प्रकार लगाये श्री महाप्रभु जी ने आवाज लगायी, **"बसन्ती जल्दी आ जाओ।"** अशरण शरण की यह आज्ञा सुनकर श्रीमती बसन्ती देवी दौड़ी-दौड़ी उनके पास पहुँच गयी एवं हाथ जोड़कर खड़ी हो गयी। श्री महाप्रभु जी ने आदेशित किया, "बैठ जाओ"। उनकी आज्ञा पाकर वह उनके सामने हाथ जोड़कर बैठ गयी। करूणासागर ने अपने मुखारबिन्दु से कहा, "बसन्ती ! आज हम तुम पर बहुत प्रसन्न है, जो इच्छा हो माँग लो।" श्रीमती बसन्ती देवी ने प्रार्थना किया कि प्रभो ! हमारा रामकुमार नाम का एक लड़का है, जो नालायक है, हमारी एक भी बात नहीं मानता किसी आज्ञा का पालन नही करता और पढ़ने में बिल्कुल कमजोर है, ऐसी कृपा करें कि वह पुलिस कप्तान बन जाय। श्री प्रभु जी ने कहा, "अरी, तुमने क्या माँग लिया कोई अलौकिक वस्तु माँग ली होती आज तो मैंने यह तय किया था कि जो कुछ तुम माँगोगी, मैं सभी प्रदान कर दूँगा। परन्तु तुमने तो बहुत ही छोटी बात कहा। अच्छा! कोई बात नही तेरा बेटा रामकुमार अवश्य ही पुलिस कप्तान बनेगा।

श्री महाप्रभु जी के अमोघ प्रसाद स्वरूप श्री रामकुमार की बुद्धि तत्काल प्रखर हो गयी, उसने स्नातक शिक्षा अच्छी श्रेणी मे उत्तीर्ण की, उप पुलिस कप्तान की प्रतियोगिता में सफल रहा एवं समय के अन्तराल के साथ पुलिस कप्तान बन गया। उसकी प्रथम तैनाती शाहजहाँ पुर जिले में हुयी। इसी मध्य इनकी शादी शकुन्तला नाम की एक लड़की से हो गयी। इस प्रकार पुलिस कप्तान श्री रामकुमार गोयल जी ने अपनी माता श्रीमती बसन्ती देवी एवं पत्नी श्रीमती शकुन्तला देवी के साथ सकुशल जीवन यापन आरंभ किया। बड़ा ही आनन्ददायक एवं प्रसन्नता का वातावरण इनके परिवार का बन गया था। सती साध्वी श्रीमती बसन्ती देवी जी नित्य नियम से प्रातः सायं महाप्रभु जी की खूब श्रद्धायुक्त मन से आरती पूजन किया करती थीं। एवं बराबर उन्ही का चिन्तन किया करती थीं। उनकी पुत्रवधू श्रीमती शकुन्तला देवी पढ़ी लिखी महिला थी। यद्यपि महाप्रभु जी के स्वरूप को प्रत्येक दिन प्रणाम निवेदित अवश्य करती थी। परन्तु आधुनिकता पर अधिक एवं प्रभु जी पर कम ही विश्वास था। प्राणी का सुख दुःख एक दूसरे के पूरक है। सुख के बाद दुःख एवं दुःख के बाद सुख आना क्रमानुसार दैवी विधान ही है। अतः कुछ वर्ष सुख से व्यतीत करने के बाद दुःख के कर्म संस्कार फल का भुगतान उपस्थित हुआ। पुलिस कप्तान महोदय श्री रामकुमार गोयल जी का पेट खराब रहने लगा। क्रमशः पेट का यह रोग बढ़ता ही गया एवं वे पेचिस के रोगी बन गये। लाख दवा करने के पश्चात भी रोग घटने की बजाय बढ़ता ही गया। एक समय वह भी आ गया कि पुलिस कप्तान राम कुमार गोयल जी एक असाध्य पेचिस रोगी घोषित कर दिये गये। जीवित रहने के लिए आहार लेना आवश्यक है। परन्तु किसी भी खाद्य पदार्थ का पाचन न होना इनके लिए कष्टकारी होता गया। डाक्टरों द्वारा लाइलाज घोषित होने के बाद जब सभी

औषधियों ने अपना प्रभाव नहीं दिखाया तो वे चारपायी पर पड़े-पड़े अपने जीवन के अन्तिम क्षणों का इन्तजार करने लगे। लगातार पेट खराब रहने के कारण उनका स्वास्थ्य शनैःशनैः खराब होते-होते इस प्रकार का हो गया था कि शरीर हड्डियों का कंकाल मात्र शेष रह गया था। ये अपने शरीर से पूर्णरूपेण निराश एवं उदास हो गये थे, दोनों आँखे भीतर धँस जाने के कारण शरीर डरावना लग रहा था। अपनी स्वार्थ सिद्धि हेतु इनके पास आने वाले प्राणियों ने इन्हें असहाय जानकर इनसे मिलना बन्द कर दिया था। क्योंकि ये लगातार अवकाश पर चल रहे थे एवं धीरे-धीरे नौकरी से सस्पेंशन की स्थिति बनने लगी। एक समय वह भी आ गया जब उनके अपने ही अंगों ने साथ देना बन्द कर दिया। वे अपने अन्तिम समय का इंतजार करने लगे। ऐसे समय में भी इनकी माता जी श्रीमती बसन्ती देवी लगातार महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज का चिन्तन एवं दोनों समय आरती पूजन एवं ध्यानाभ्यास किया करती थीं। उनकी पुत्रवधू श्रीमती शकुन्तला देवी ने ऐसे विकट एवं कष्टकारी समय में महाप्रभु जी की आरती पूजन एवं ध्यानाभ्यास तथा चिन्तन जो श्रीमती बसन्ती देवी द्वारा किया जा रहा था बड़ा ही खराब लग रहा था। वे चाहती थीं कि वे वहाँ महाप्रभु का चिन्तन एवं स्मरण छोड़कर अपने पुत्र रामकुमार गोयल का चिन्तन क्यों नहीं करती जो कुछ ही दिनों का मेहमान है। उसने कई बार अपनी सासु (अपने पतिदेव श्री रामकुमार गोयल की माँ) से निवेदन किया कि अपने गुरूदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज से पुत्र रक्षा हेतु प्रार्थना करें परन्तु वह प्रत्येक बार यही कहती थी कि बहु घबड़ाओं नहीं। श्री प्रभु जी अवश्य ही प्राण रक्षा करेंगे। परन्तु उनके पतिदेव रामकुमार गोयल की तबियत बद से बदत्तर होती ही गयी। एक दिन जब श्री गोयल की तबियत सबसे अधिक खराब हो गयी तो वह दौड़ी-दौड़ी श्रीमती बसन्ती देवी के पास यह कहने गयी कि उनका लाडला पुत्र अपनी अन्तिम श्वासें गिन रहा है तो देखा कि वे महाप्रभु के स्वरूप के सामने बैठकर आरती करने के पश्चात् ध्यान में बैठने की तैयारी कर रही है। उसने बड़े ही उपेक्षित स्वर में कहा कि आप के प्रभु जी जिनके स्वरूप को आप ईश्वर से कुछ ज्यादे ही सम्मान देती है। धरे के धरे रह जायेंगे एवं आपका पुत्र काल कलवित हो जायेगा। आंगन में खड़े होकर उसने ये शब्द पूजा कोठरी में ध्यान में बैठी बसन्ती देवी को निमित्त करके कहा। उसकी इस बात का उत्तर श्री बसन्ती देवी दें इससे पहले ही उसे स्पष्ट आकाशवाणी सुनायी दी। अरे शकुन्तला ! अनरगल प्रलाप बन्द करके इस कदम्ब वृक्ष (जो आंगन में ही था) की एक टहनी तोड़कर अपने पतिदेव को धीरे-धीरे हवा कर दे वह ठीक हो जायेगा। श्री शकुन्तला देवी यह आकाशवाणी सुनकर आश्चर्य चकित हो गयी। श्रीमती बसन्ती देवी ने भी यह आकाशवाणी स्पष्ट रूप से सुनी। परन्तु उसने ध्यान करना जारी ही रखा। जब श्रीमती शकुन्तला देवी ने अपनी माता जी से इस आकाशवाणी की बात बतलाना चाहा तो उसने कहा कि जो आदेश श्री प्रभु जी ने जैसा दिया है तुम वैसा ही करो। आँगन में उपस्थित कदम्ब के पेड़ से श्रीमती

शकुन्तला देवी ने एक टहनी तोड़कर श्री राम कुमार गोयल को हवा करना आरम्भ कर दिया टहनी की प्रथम हवा लगते ही आधा रोग ठीक हो गया। वह नित्य सब दवा छोड़कर कदम्ब की पतली पतली छहनी तोड़कर हवा करती हुयी उनके स्वस्थ होने की कामना करती रही व चौथे दिन वे पूर्ण रूपेण स्वस्थ हो गये। श्री गोयल का रोग पूर्ण ठीक हो जाने के बाद मात्र कमजोरी शेष रह गयी थी जो धीरे-धीरे ठीक हो गयी। इस प्रकार एक महिने बाद श्री राम कुमार गोयल जी फिर से पूर्ण स्वस्थ एवं निरोग हो गये।

इसके पश्चात पुनः पूरा परिवार अर्थात् श्री रामकुमार गोयल जी, उनकी माता श्रीमती बसन्ती देवी, उनकी धर्मपत्नी श्रीमती शकुन्तला जी ने सानन्द प्रसन्नता पूर्वक जीवन यापन करना आरम्भ कर दिया। इस प्रसंग में यह बताना समीचीन होगा कि विपत्ति के कष्टदायक क्षणों में भी श्री रामकुमार गोयल जी की माता जी ने अपना आरती पूजा एवं ध्यान के पुनीत कार्यक्रमों का विधिवत पालन किया। श्री रामकुमार गोयल की श्री प्रभु जी द्वारा अलौकिक प्रकार से रक्षा किये जाने एवं श्रीमती शकुन्तला देवी द्वारा श्री प्रभु जी की स्पष्ट आकाश वाणी सुनने के पश्चात उनके स्वभाव में महान परिवर्तन आ गया एवं श्री प्रभु जी के स्वरूप के सामने उपस्थित होकर हाथ जोड़कर उन्होंने कहे हुये अपशब्दों के लिए बारम्बार क्षमा याचना की। इस प्रसंग में यह भी बतलाना उचित होगा कि कदम्ब की पतली टहनी को तोड़कर जब श्रीमती शकुन्तला देवी ने उसे अच्छी प्रकार देखा कि इसमें क्या विशेषता है कि उनके पतिदेव ठीक हो जायेंगे तो प्रत्येक पत्ते पर लिखा था कि "श्री प्रभु रक्षक हैं, श्री प्रभु रक्षक हैं।" यह घटना काफी समय पूर्व की है। समयानुसार श्रीमती बसन्ती देवी ने श्री प्रभु जी के चरण कमलों में अपनी जीवन ज्योति अपनी इच्छानुसार समर्पित कर दी। इस समय यद्यपि श्री रामकुमार गोयल नही है (शरीरान्त हो गया है) परन्तु श्री प्रभु जी के चरण कमलों में इनके बाल गोपालो की पूर्ण श्रद्धा है, इनके घर में विराजमान श्री प्रभु जी एवं श्री महाप्रभु जी के स्वरूपों की खूब श्रद्धा विश्वास के साथ दोनों समय आरती पूजन पूरे परिवार के साथ होता है परिणामस्वरूप इनके सभी लौकिक एवं परलौकिक कार्य स्वतः सफल हो रहे हैं।

प्राणी मात्र का मन प्रत्यक्षदर्शी है एवं सद्गुरू सत्ता सर्वदर्शी है। अतः हम अपने वर्तमान को सुखमय एवं प्रसन्नता दायक बनाने के लिए सदैव प्रयत्नरत रहते हैं परन्तु श्री सद्गुरूदेव हमारे परम लक्ष्य को (मोक्ष) सरल बनाने के लिए प्रयास किया करते हैं। किये गये शुभाशुभ कर्मयोग को तो भोगना ही पड़ेगा। हाँ यदि ध्यान स्थिति बन गयी तो इसका भुगतान सूक्ष्म से हो जाया करता है एवं प्राणीमात्र को महान स्थूल कष्ट नही झेलना पड़ता। अतः हम सभी को निष्काम भाव से दयालु श्री सद्गुरूदेव भगवान के चरणों में अवश्य ध्यानाभ्यास का अभ्यास करना चाहिए।

***

सद्गुरूदेव की अलौकिक कृपा

—श्रद्धा राठौर—

पल-पल बन्दनीय परम करूणार्णव, करूणानिधान अपने बच्चों पर सहज ही कृपालु परम श्री रामलाल जी महाराज एवं सद्गुरूदेव भगवान योगिराज अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज की एक अकिंचन बालिका पर हुयी कृपा की घटना प्रस्तुत कर रही हूँ।

मैं झाँसी मंडल के गुरू भाई श्री श्याम बहादुर सिंह भदौरिया (दाऊ साहब) की नातिन हूँ। मेरे पिता श्री बलवीर सिंह चौहान व माता श्रीमती हीरामती चौहान कई वर्षों पूर्व दीक्षा ले चुके है, इसलिये मेरा भी आनन्द-कन्द गुरूदेव जी पर अटूट विश्वास है। मेरे परिवार पर गुरू जी की प्रारम्भ से ही विशेष कृपा रही है। पिछले वर्ष २५ जनवरी १९९८ को मेरा विवाह उन्नाव निवासी श्री देवेश प्रताप सिंह राठौर जी से हुआ। विवाह के आठ माह ही व्यतीत हुये थे कि मेरे पति का स्थानान्तरण उन्नाव से जयपुर हो गया। उस समय वे उन्नाव में सहारा इण्डिया में कार्यरत थे। मैं गर्भवती थी। मेरी सास पैरों से अपाहिज थी, जिसके कारण जयपुर जाना सम्भव न था। अतः मैं काफी परेशान थी, दिन-रात मैं गुरू जी को मनाती, व मन्त्रजाप करती। क्योंकि गुरुजी पर मेरा विश्वास अटूट था। १२ अक्टूबर १९९८ के लगभग ही मैं प्रातः ब्रह्ममुहूर्त में गुरू चालीसा व हनुमान चालीसा बोलती रहती थी, जैसा कि मेरे पति का कहना है।

२८ अक्टूबर १९९८ को प्रातः ३.१५ मि. पर मैंने एक स्वप्न देखा कि हर साल की तरह इस बार भी आनन्दकन्द प्रभु जी महाराज का कार्यक्रम चल रहा है भंडारा हो रहा है, तभी मैं गुरूदेव जी से दीक्षा लेने की इच्छा से प्रभु जी के कक्ष में गयी। वहाँ मैंने देखा कि आनन्दकन्द प्रभु जी महाराज श्री श्री रामलाल जी कक्ष के मध्य में खड़े हुये हैं। एक तरफ श्री गुरूदेव जी बैठे चौकी पर कुछ कागज लिये लिख रहे हैं। मैंने कमरे में प्रवेश किया, मेरे साथ ही एक ब्रह्मचारी जी ने भी प्रवेश किया। ब्रह्मचारी जी ने प्रभु जी से पूछा-प्रभु आपने भोजन किया अथवा नहीं। प्रभु जी ने गुरूदेव जी से कहा लल्ला तुमने भोजन की व्यवस्था की या नहीं। गुरूदेवजी ने कहा कि प्रभु अभी तो नहीं की। इस पर प्रभु जी ने उन्हें भोजन की व्यवस्था करने का आदेश दिया। फिर मुझसे बोले कहो क्या बात है ? तब मैंने अपना परिचय देते हुये कहा कि मैं झांसी के गुरूभाई श्री श्याम बहादुर सिंह (दाऊ साहब) की नातिन हूँ, मेरे माता-पिता आपसे दीक्षा लिये हुये है। अतः मैं भी आपसे दीक्षा लेना चाहती हूँ। तब प्रभु जी ने पूछा अकेले आयी हो या जोड़े के साथ आयी हो। इस पर मैंने जबाव दिया कि जोड़े के साथ आयी हूँ। तब प्रभु जी बोले मैं तुम्हें दीक्षा तो अवश्य दूंगा, लेकिन पहले तुम्हारा बच्चा संकट में है, मुझे उसकी रक्षा करनी है। तुम एक काम करो रविवार के दिन आटे की मोती के बराबर गोली बनाकर सरसों के तेल में पिरो कर, दो अंगुल लम्बी माला बना लो। फिर प्रभु जी ने मुझे वैसा ही करके दिखाया। आटे की गोली बना सरसों के तेल को धागे की तरह पकड़ कर गोलियों को उसमें पिरो दिया बोले समझ गयी।

इतना कहते ही मेरी आँख खुल गयी। प्रातः उठते ही मै परेशान हो गयी कि प्रभु जी किस संकट की बात कर रहे थे ? उनके आदेश का पालन कैसे हो पायेगा। इस स्वप्न के १० वें दिन ८ नवम्बर १९९८ को पति व मैनेजर की स्थानान्तरण को लेकर काफी बहस हो गयी, इस मैनेजर ने पता नही क्या समझा और कोतवाली में झूठी शिकायत की कि देवेश ने हम पर जान लेवा हमला किया है। जिससे ३०६ धारा में रिपोर्ट लिखी जाय। तभी सायं ५ बजे पुलिस आकर इन्हें ले गयी। रात्रि आठ बजे तक कोई समाचार नही मिला। पड़ोसी भी ३०६ धारा का नाम सुनकर बीच में नही पड़ना चाहते थे। तब रात्रि ९.०० बजे मैं गुरूजी को प्रणाम करके, रज माथे पर लगाकर आशीर्वाद लेकर पड़ोसन के साथ थाने पहुँची। वहाँC.O. व मैनेजर से मिली, कोई मेरी बात मानने को तैयार नही था। काफी देर बहस हुयी, तब करीब ११.०० बजे रात को समझौता हो सका। घर आकर गुरूदेव जी को हार्दिक धन्यवाद दिया लेकिन कुछ शुभचिन्तकों ने बताया कि इस केस के कारण देवेश के टर्मिनेट के आदेश होने वाले है। अतः प्रातः होते ही दोनों लोग मुख्यालय (लखनऊ) पहुँचे। वहाँ अधिकारियों से मिले कभी, कोई मिलता तो कभी कोई नही मिलता। गर्भावस्था होने पर भी ६-७ मंजिल (३०० सीढ़ियाँ) चढ़नी पड़ती, कभी प्रातः १० से सायं ५ बजे तक बैठे रहते लेकिन अधिकारी मिलते नही। दिन भर परेशान रहने पर अन्त में निराशा ही मिलती, मैं मन ही मन गुरूजी का जाप करती व उन्ही का ध्यान करती, मन में अटूट विश्वास था कि गुरू जी मुझ पर कृपा अवश्य करेंगे। अतः मे १० दिन अथाह परेशानियों के बावजूद १९ नवम्बर को इस केस का निर्णय हुआ और इनका स्थानान्तरण जयपुर से लखनऊ (मुख्यालय) हो गया। सारा मामला शान्त हो गया।

इसके साथ ही गर्भावस्था के समय मानने वाली अनेकों भ्रान्तियाँ जैसे नदी नाले पार नही करनी चाहिये, सीढ़ियाँ नही चढ़नी चाहिये भी समाप्त हो गयी, जिस पर अनन्त आनन्दकन्द प्रभुजी की कृपा दृष्टि हो उस पर इन सभी बातों का कोई असर नही होता। गुरू जी की कृपा से ये सारी विघ्न बाधायें पल भर में निपट गयीं। इस घटना के घटित होने के बाद समझ में आया कि गुरूजी किस संकट के लिये मुझे संकेत कर रहे थे।

उसके बाद मैंने रविवार के दिन गुरूजी के आदेशानुसार आटे की गोली बनाकर पूजा की प्लेट में दो अंगुल की लम्बाई के बराबर रखी। फिर उस पर ऊपर से सरसों की तेल की बूंदे रखी, जो देखने मे बिल्कुल माला सी प्रतीत हो रही थी। सरसों की बूंदे धागे सी प्रतीत होती थी, माला बनाकर उसका पूजन किया व उसे लोई में रखकर गाय को खिला दिया।

उसके बाद ११ दिसम्बर १९९८ शुक्रवार को प्रातः ४.०६ मि. पर मुझे पुत्ररत्न की प्राप्ति हुयी जो पूर्णरूपेण स्वस्थ व सुन्दर था। गुरूजी की विशेष कृपा के कारण उसका नाम दिव्यांश (दिव्य+अंश) रखा गया। क्योंकि मेरे लिये तो गुरूजी का आशीर्वाद है। गर्भ में मेरे शिशु की रक्षा कर गुरूजी ने अलौकिक कृपा की है। उसके लिये मैं सदैव ऋणी रहूँगी व प्रभुजी से यही विनती करती हूँ कि सदैव मेरे परिवार पर अपना विशेष अनुग्रह बनाये रखें।

***

सर्दियों में मौसम से बचाव

*यौगिक उपलब्धि के लिए स्वस्थ शरीर का होना आवश्यक है। स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ आत्मा निवास करती है। जो चिंतन को निर्मल और संकल्प शक्ति को दृढ़ बनाती है। अतः योग साधकों को अपने स्वास्थ्य के प्रति, पर्याप्त सचेत रहना चाहिये। योगाभ्यास से पूर्व और उसके दौरान रोगों से पूर्णतः मुक्ति पाने का प्रयत्न करना चाहिये। **'स्वास्थ्य चर्चा'** का यह नवीन स्तम्भ इस उद्देश्य में सभी का सहयोगी सिद्ध होगा ऐसा विश्वास है।*

-संपादक

इस समय सर्दियों का मौसम है। ठण्ड के कारण सर्दी, जुकाम, कफ, खांसी की शिकायत बन जाती है। अतः शरीर के बलाबल के अनुसार ही अपने कार्य करने चाहिये। इस ऋतु में योगासन, व्यायाम, जीवन तत्व साधन एवं टहलना बहुत लाभप्रद है। यदि शरीर में कफ या खांसी की शिकायत बन गई हो तो चाय के स्थान पर उष्ण व कफहर द्रव्यों का काढ़ा बनाना चाहिये। कफ या नजला के बनने पर उसका तुरन्त उपचार करना चाहिये। उसे शरीर से बाहर निकाल देना चाहिये। सूत्रनेति तथा जलनेति दुग्ध नेति भी लाभकारी है। कफ बनने पर यदि समय पर उपचार न किया जाये तो उससे आगे भयंकर असाध्य रोग उत्पन्न हो जाते हैं। दमा, श्वांस रोगों का प्रमुख कारण कफ की विकृति ही होती है। नीचे एक छोटा सा नुस्खा लिख रहे हैं। बताशे में इसका काढ़ा बनाकर पीने से कफ की निवृत्ति होती है। और अग्नि बढ़ती है।

कालीमिर्च, छोटी पीपल, दाल चीनी, नागकेशर एवं लौंग को समभाग लेकर जौकुट करके उबालकर एक चौथाई पानी शेष रह जाये तब अच्छी तरह से बताशे को पकाकर छानकर काढ़ा पी ले। इसके बाद हवा में न घूमे। यह कफ का अवश्य ही हरण करता है। भूख को बढ़ाता है और कब्ज को भी दूर करता है। सर्दियों में कफ को दूर करने के लिये च्यवनप्राश भी उत्तम दवा है किन्तु जिन लोगों को गठिया आदि वात रोग हो च्यवनप्राश नही लेना चाहिये। च्यवनप्राश मे यद्यपि उष्ण द्रव्य भी होते हैं। किन्तु प्रधान घटक आँवला होने के कारण वात-रोगियों को मुफीद नहीं है। अदरक और तुलसी का प्रयोग वात और कफ के रोगियों को लाभ देता है। सर्दियों में इनका प्रयोग भी काढ़ा बनाकर करते रहना चाहिये। वैसे तो सब के शरीर की प्रकृति (तासीर) भिन्न-भिन्न होती है। किन्तु कुछ सामान्य नियम होते हैं जिनका पालन सबको करना होता है। सर्दियों में रात्रि भोजन के के समय मूली, दही का प्रयोग सर्वथा वर्जित है। दिन के भोजन में यदा-कदा लिया जा सकता है। जिन लोगों को अपच, गैस की बीमारी हो, पेट में अफारा व वायु बनती हो उन्हें फूल-गोभी व मटर का अधिक प्रयोग नहीं करना चाहिये। छोटी हरड़ को गोमूत्र में पाँच छः घण्टे भिगोकर अथवा छाछ मे भिगोकर छाया में थोड़ा सुखा लेना चाहिये। फिर शुद्ध घी में भून लेना चाहिये। इस प्रकार से शोधित हरड़ एक दो खाने से खट्टी डकार, गैस, कब्ज व अन्य उदर विकार दूर हो जाया करते हैं यह बहुत सस्ती व अच्छी घरेलू दवा है।

* * *

अपने लिए नहीं; भगवान के लिए !

यहाँ सृजन करने के लिये यदि कुछ है तो वह विज्ञान का ही सृजन है। अर्थात् इस पृथिवी पर, केवल मन-बुद्धि और प्राण में ही नहीं, प्रत्युत शरीर में और इस जड़ प्रकृति में भी भगवत्सत्ता का अवतरण कराना है। हमारा उद्देश्य अहंभाव के फैलाव को रोकने वाले प्रतिबन्धों को हटाना अथवा मानव मन की कल्पनाओं या अहंकारगत प्राणवासनाओं की स्वार्थपूर्ति के लिये खुला मैदान छोड़ देना और बेरोक आश्रय प्रदान करना नहीं है। यहाँ कोई भी इसलिये नहीं है कि 'जो मन भावे करे' या किसी ऐसे संसार को रचे जिसमें हमलोग अपनी मनमानी कर सकें; यहाँ हमें तो वही करना है जो भगवान् चाहते हैं और ऐसा ही संसार रचना है जिसमें भगवदिच्छा अन्तर्निहित सत्य को प्रकट करे—वह भगवदिच्छा किसी मानव-अज्ञान से विकृत न हो। विज्ञान के इस योग में साधक को जो काम करना होता है वह कोई उसका अपना काम नहीं है जिस पर वह अपनी शर्तें भी लाद सके, प्रत्युत वह कर्म भगवान् का है और उसे वह कर्म भगवन्निर्दिष्ट नियमों के अनुसार ही करना होगा। हमारा योग हमारे लिये नहीं है, बल्कि भगवान् के लिये है। हम जो कुछ व्यक्त करना चाहते हैं वह हमारा वैयक्तिक व्यक्तीकरण नहीं है—सर्वतन्त्रस्वतन्त्र, सर्वबन्धविनिर्मुक्त वैयक्तिक अहंकार का भी व्यक्तीकरण नहीं है; यह स्वयं भगवान् का व्यक्त होना है। हमारी मुक्ति, हमारी पूर्णकामता और हमारी परिपूर्णता तो भगवान् के व्यक्त होने का ही एक परिणाम और अंगमात्र है और सो भी किसी अहंभाव से नहीं, न किसी अहंता-ममता से निकले स्वार्थ के लिये। यह मुक्ति, पूर्णकामता, परिपूर्णता भी हमारे अपने लिये नहीं, भगवान के लिये है !

—महर्षि अरविन्द

(Lights On Yoga पुस्तक से साभार)

SIDDHYOG Regd. No. L. AG. 008

जनवरी, 2000

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग-प्रशिक्षण केन्द्र

सवांई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER

Book-Post

श्री --

अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति। नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः।।
योगसंन्यस्तकर्माणं ज्ञानसंछिन्न संशयम्। आत्मवन्तं न कर्माणि निबन्धन्ति धनंजय।।

(श्रीमद्भगवद्गीता)

विवेकहीन और श्रद्धारहित संशययुक्त मनुष्य परमार्थ से अवश्य भ्रष्ट (च्युत) हो जाता है। ऐसे संशययुक्त मनुष्य के लिए न यह लोक है, न परलोक है और न सुख ही है। हे धनंजय! जिसने कर्मयोग की विधि से समस्त कर्मों का परमात्मा में, अर्पण कर दिया है, जिसने विवेक द्वारा समस्त संशयों का नाश कर दिया है ऐसे वश में किए हुए अन्तःकरण वाले पुरुष को कर्म नहीं बाँधते।

प्रकाशक एवं मुद्रक—विनय गजानन शर्मा द्वारा कर्मयोग प्रिन्टिंग प्रेस, बसई कलाँ, ताजगंज, आगरा के लिए राष्ट्रीय ब्लाक एवं प्रिन्टिंग वर्क्स, जौहरी बाजार, आगरा से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र सवांई, (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। फोन : 732326